युग प्रमुख चारित्र शिरोमणि सन्मार्ग दिवाकर
आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज
हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष में

मदनपराजय

[श्री नागदेव विरचित]

सम्पादक :

डॉ० लालबहादुर शास्त्री
दिल्ली

प्रकाशक :

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद

द्रव्यदाता :

श्रीमती शान्तिदेवी सेठी
धर्मपत्नी : श्री मोहनलालजी सेठी
डीमापुर (आसाम)

ॐ

नागदेवविरचितो

मदनपराजयः

प्रथमः परिच्छेदः

* १ यदमलपदपद्मं श्रीजिनेशस्य नित्यं
शतमखशतसेव्यं पद्मगर्भादिवन्द्यम् ।
दुरितवनकुठारं ध्वस्तमोहान्धकारं
सदखिलसुखहेतुं त्रिप्रकारं नमामि ॥१॥

यः शुद्धरामकुलपद्मविकासनार्को
जातोऽर्थिनां सुरतरुर्भुवि चङ्गदेवः ।
तन्नन्दनो हरिरसत्कविमार्गसिंहः
तस्माद्भिषग्जनपतिर्भुवि नागदेवः ॥२॥

तज्जावुभौ सुभिषजाविह हेमरामौ
रामात्प्रियङ्कर इति प्रियदोऽर्थिनां यः
तज्जश्चिकित्सितमहाम्बुधिपारमाप्तः
श्रीमल्लुगिञ्जिनपदाम्बुजमत्तभृङ्गः ॥३॥

तज्जोऽहं नागदेवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः
छन्दोऽलङ्कारकाव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहम् ॥४॥

कथा प्राकृतबन्धेन हरिदेवेन या कृता ।
वक्ष्ये संस्कृतबन्धेन भव्यानां धर्मवृद्धये ॥५॥

यस्मिन् भव्यजनप्रबोधजनिका या मोक्षसौख्यप्रदा-
संसाराब्धिमहोर्म्मिशोषणकरी नृणामर्थाय प्रिया ।
यस्याः सुश्रवणात् पुराकृतमघं नाशं समूलं व्रजेत्
या दारिद्र्यविनाशिनी भयहरा वक्ष्ये कथां तामहम् ॥६॥

* १ मैं, मन, वचन और कायसे श्री जिनेन्द्र भगवान् के उन निर्मल चरण-कमल को नमस्कार करता हूँ, जिनकी इन्द्र उपासना करते हैं और ब्रह्मा आदिक वन्दना करते हैं। जो पापरूपी वनके लिए कुठारके समान हैं, मोह-अन्धकारके नाशक हैं और वास्तविक सम्पूर्ण सुखको देने वाले हैं।

पृथिवीपर पवित्र रघु-कुल रूपी कमलको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान चङ्गदेव हुए। चङ्गदेव कल्पवृक्षके समान याचकोंके मनोरथ पूर्ण करते थे। इनका पुत्र हरिदेव हुआ। हरिदेव दुर्जन कवि-हाथियोंके लिए सिंहके समान था। इनका पुत्र नागदेव हुआ, जिसकी भूलोकमें महान् वैद्यराजके रूपमें प्रसिद्धि हुई।

नागदेवके हेम और राम नामके दो पुत्र हुए। यह दोनों भाई भी अच्छे वैद्य थे। रामके प्रियङ्कर नामका एक पुत्र हुआ, जो अर्थियोंके लिए बड़ा ही प्रिय था। प्रियङ्करके भी श्रीमल्लुगित् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीमल्लुगित् जिनेन्द्र भगवानके चरण-कमलके प्रति उन्मत्त भ्रमरके समान अनुरागी था और चिकित्सा-शास्त्र-समुद्रमें पारंगत था।

श्रीमल्लुगित्का पुत्र मैं-नागदेव हुआ। मैं (नागदेव) अल्पज्ञ हूँ तथा छन्द, अलङ्कार, काव्य और व्याकरण-शास्त्रमेंसे मुझे किसी भी विषयका बोध नहीं है।

हरिदेवने जिस कथा (मदन-पराजय) को प्राकृतमें लिखा था, भव्य जीवोंके धार्मिक विकासकी दृष्टिसे मैं उसे संस्कृतमें निबद्ध कर रहा हूँ।

मैं यहाँ जिस कथाकी चर्चा कर रहा हूँ, वह भव्यजनों का विवेक जागृत करनेवाली है और अविनश्वर सुख देने वाली है। संसार-सागरकी महत् ऊर्मियोंको विलीन करती है और श्रोताओं-को अत्यन्त प्रिय है। इतना ही नहीं, इस कथाके सुननेसे पूर्व जन्मके समस्त पाप समूल धुल जाते हैं और दारिद्र्य तथा भय भाग जाते हैं।

कथा इस प्रकार है :—

* २ अस्ति मनोहरमेकं भवनाम पत्तनं प्रसिद्धम् । तत्रै-कोदण्डमण्डितो मकरध्वजो नाम राजाऽस्ति । तेन मकर-ध्वजेन सकलसुरासुरेन्द्रनरनरेन्द्रफणिफणीन्द्रप्रभृतयो दण्डिताः । एवंविधस्त्रैलोक्यविजयी युवाऽतिरूपवान् महाप्रतापी त्यागी भोगी रतिप्रीतिभार्याद्वयो मोहप्रधानसमन्वितः सुखेन राजक्रियां वर्त्तमानोऽस्थात् ।

स च मकरध्वज एकस्मिन् दिने शल्यत्रयगारवत्रय-दण्डत्रयकर्माष्टकाष्टादशदोषास्रव-विषयाभिमानमदप्रमाद-दुष्परिणामासंयमसप्तव्यसनभटप्रभृतिभिः सर्वैः सभासदैर्वे-ष्टितोऽमरराजवद्राजते । एवमन्यैरपि नरनरेन्द्रैः सेवितो मकरध्वजः सभामण्डपे मोहं प्रति वचनमेतदुवाच—

भो मोह, लोकत्रयमध्ये काचिदपूर्वा वार्त्ता श्रुताऽस्ति ?
अथ मोहोऽब्रवीत्-देव, वार्त्तैकाऽपूर्वा श्रुताऽस्ति । तद्(दे)
कान्ते भवद्भिः श्रूयताम् ।

"अपि स्वल्पतरं कार्यं यद्भवेत् पृथिवीपतेः ।
तन्न वाच्यं सभामध्ये प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ॥१॥"

तथा चो तथो)क्तञ्च—

"षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरीभवेत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णोऽरक्ष एव सः ॥२॥"

* २ भव नामका एक सुप्रसिद्ध तथा मनोहर नगर था । इस नगरका राजा मकरध्वज था । मकरध्वज अपने सफल धनुष-बाणसे मण्डित था और उसके द्वारा इसने इन्द्र, नर, नरेन्द्र, नाग और नागेन्द्र-सबको अपने अधीन कर रक्खा था । वह अतिशय रूपवान् था। महान् प्रतापी था। दानशील था। विलासी था। रति और प्रीति नामकी उसकी दो पत्नियाँ थीं। इसके प्रधान मन्त्रीका नाम मोह था। मकरध्वज त्रैलोक्य-विजयी था और अपने प्रधान सचिवके सहयोगसे बड़े आरामके साथ राज्यका संचालन करता था।

एक दिनकी बात है। मकरध्वज के सभा-भवनमें शल्य, गारव, दण्ड, कर्म, दोष, आस्रव, विषय, अभिमान, मद, प्रमाद दुष्परिणाम, असंयम और व्यसन आदि समस्त योधा उपस्थित थे। अनेक राजा-महाराजा मकरध्वज की उपासनामें व्यस्त थे। इसी समय महाराज मकरध्वजने अपने प्रधान सचिव मोहसे पूछा—मोह, क्या तीनों लोकमेंसे कहीं कोई अपूर्व बात का सुननेका समाचार तो तुम्हें नहीं मिला है ? मोहने उत्तरमें कहा—महाराज, एक अपूर्व बात अवश्य सुननेमें आई है; पर उसे आप एकान्तमें चलकर सुनें। क्योंकि बृहस्पतिने बतलाया है कि राज-सभामें राजाके लघु कार्यकी भी चर्चा नहीं होनी चाहिए। कहा भी है :—

"तीन व्यक्तियों तक पहुंचकर किसी भी गुप्त बातका भेद खुल जाता है। जब तक वह दो व्यक्तियों तक रहती है, सुरक्षित रहती

है। इसलिए इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि मन्त्र दो व्यक्तियों तक ही सीमित रहे।

* ३ एवं तद्वचनं श्रावयितुमेकान्ते गत्वा मोहमल्लः कामं प्रत्याह-भो स्वामिन्, सञ्ज्वलनेन विज्ञप्तिकेयं प्रेषिता। तद्भवद्भिरवधार्यताम्। एवमुक्त्वा मोहोऽनङ्गहस्ते विज्ञप्तिकामदात्। ततस्तां विज्ञप्तिकां मदनो यावद् वाचयति, तावदतिचिन्तापरिपूर्णो भूत्वा मोहं प्रत्यभणत्—मोह, मया जन्मप्रभृत्येतदिदानीमपूर्वं श्रुतम्। तदेतत्सत्यं न भवत्येव मे मनसि वर्त्तते। यतोऽशेषं त्रैलोक्यं मया जितम्। तदन्यस्त्रिभुवनबाह्यो जिननामा राजा कोऽसौ जातोऽस्तीति। असम्भाव्यमेतत्। तच्छ्रुत्वा मोहो बभाण—हे देव, अवश्यमेवेयं सत्या वार्ता। यतः सञ्ज्वलनोऽसौ स्वामिनं प्रति मिथ्योक्तिं न करोत्येव। उक्तं च—

> "सर्वदेवमयो राजा वदन्ति विबुधा जनाः।
> तस्मात्तं देववत् पश्येन्न व्यलीकं कदाचन ॥३॥"

तथा च—

> "सर्वदेवमयस्यापि विशेषो भूपतेरयम्।
> शुभाशुभफलं सद्यो नृपाद्देवाद्भवान्तरे ॥४॥"

अन्यच्च, भो स्वामिन्, तं जिनराजं किं न वेत्सि? पुराऽस्माकञ्च भवनगरे दुर्गतिवेश्याया आश्रमे यः सततं वसति, चौर्यकर्म करोति। भूयोभूयोऽपि कोट्टपालकेन मृत्युनाऽपि बध्यते मार्यते च। एवमेकस्मिन् दिने दुर्गतिवेश्यायां विरक्तो भूत्वा कालादिलब्धिवशेन अस्मच्छुभभाण्डागार

प्रविश्य त्रिभुवनसारं रत्नत्रयं प्रभूतार्थं गृहीत्वा तत्क्षणाद् गृहभार्यादिसमूहं त्यक्त्वोपशमाश्वमारुह्य विषयभटेन्द्रियभटै-दुर्द्धरं चारित्रपुरं ययौ । तत्र तस्य पञ्चमहाव्रतसुभटा ये सन्ति तैः प्रभूतार्थरत्नसंयुक्तं राज्ययोग्यं दृष्ट्वा तस्मै तपो-राज्यं दत्तम् । एवं तस्मिंश्चारित्रपुरे गुणस्थानसोपानालङ्कृते दुर्गवद्दुर्गमे सुखेन राज्यक्रियां वर्त्तमानोऽस्ति ।

अन्यच्च, देव, तस्य जिनस्येदानीं मोक्षपुरे विवाहो भविष्यतीति सकलजनपदोत्सवो वर्त्तते ।

तच्छ्रुत्वा कामेनाभाणि–भो मोह, तत्र मोक्षपुरे कस्यात्मजा, कीदृशाऽस्ति ?

* ३ मोह अपनी अपूर्व बात सुनानेके लिए मकरध्वजको एकान्तमें ले गया । वहाँ उसने मकरध्वज के हाथ में एक विज्ञप्ति दी और कहा–महाराज, संज्वलनने यह विज्ञप्ति भेजी है । इसे देखिए ।

जैसे ही मकरध्वज ने विज्ञप्ति पढ़ी; उसके ललाटपर चिंताकी रेखाएँ उभर आईं । वह मोहसे कहने लगा—मोह, मैं इतना बड़ा हो गया, लेकिन इस प्रकारकी बात आज ही सुन रहा हूँ । मुझे लगता है, यह बात सच नहीं है । जब मैं तीनों लोक अधीन कर चुका हूँ तो त्रिभुवनसे अतिरिक्त यह 'जिन' नामका राजा कहाँसे आ गया ? नहीं, यह बिल्कुल सम्भव नहीं है ।

उत्तरमें मोह कहने लगा–देव, यह बात असम्भव नहीं, बल्कि बिल्कुल सत्य है । क्योंकि संज्वलन आपके साथ कभी भी असत्य-व्यवहार नहीं कर सकता । वह इस बातको खूब समझता है कि–"विद्वज्जन, राजाको समस्त देवोंका प्रतीक मानते हैं । इसलिए राजाको देवस्वरूप ही समझना चाहिए और उसके साथ मिथ्या

व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए।" साथ ही वह इस बातसे भी परिचित है कि—"यद्यपि राजा समस्त देवों का प्रतिनिधि है फिर भी उसमें और देवमें एक अन्तर है। और वह यह है कि राजाके पाससे अच्छा-बुरा परिणाम तत्काल ही मिल जाता है, जब कि देवके पाससे वह जन्मान्तरमें प्राप्त होता है।" फिर स्वामिन्, क्या जिन-राजकी आपको बिलकुल स्मृति नहीं है?

राजन्, बहुत वर्ष पहले यह जिनराज हमारे इसी भव-नगर में रहता और दुर्गति-वेश्याके यहाँ पड़ा रहता था। चोरी करनेकी रोजकी आदत थी। फलतः यह कोतवालके द्वारा पकड़ा जाता, पीटा जाता और यहाँ तक कि इसे मृत्यु-दण्ड देने तककी घोषणाएँ दी जाती।

एक दिन काललब्धिसे यह दुर्गति-वेश्यासे विरक्त होकर अपने श्रुत-मन्दिरमें घुसा। वहाँ इसे त्रिभुवनके सारभूत अमूल्य तीन रत्न हाथ लगे। इन रत्नों ने इसे इतना आकर्षित किया कि इनके आकर्षणसे यह घर, स्त्री, बाल-बच्चे - सबको भूल गया और तुरन्त उपशम-अश्व पर सवार होकर चारित्र-पुर चला गया। विषय और इन्द्रिय योधाओंने इसे बश भर रोका, परन्तु वे रोकनेमें समर्थ न हो सके। देव, इतना ही नहीं, जब चारित्र-पुरके पाँच महाव्रत-भटों ने देखा कि जिनराज अमूल्य रत्नत्रयोका स्वामी है और यह राज्य-संचालनके सुयोग्य है तो उसे तपोराज्य दे दिया। स्वामिन् इस प्रकार यह जिनराज गुणस्थानरूपी सीढ़ियोंसे सुशोभित और दुर्ग-जैसे दुर्गम चारित्र-पुर में सुखपूर्वक राज्य कर रहा है।

महाराज, इसके सम्बन्धका एक नया समाचार और सुना है कि अचिर भविष्यमें जिनराजका मोक्षपुरमें विवाह होगा। इसलिए समस्त जनपदोंमें उत्सव-समारोह मनाया जा रहा है।

मकरध्वजने ज्यों ही मोहकी यह बात सुनी, उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह मोहसे कहने लगा-मोह, यह तो बतलाओ, मोक्षपुरमें किसकी कन्या है और उसकी रूप-राशि किस प्रकारकी है, जिसके साथ जिनराजका विवाह होने जा रहा है ?

* ४ अथ मोहोऽवदत्-हे देव, तस्मिन् मोक्षपुरे सिद्धसेनतनुजा मुक्तिनामाऽतिसुन्दरी, शिखिगलनिभनीलयमुनाजलनिभमधुकरकुलसेवितसुरभिकुसुमनिचयनिचितमृदुघनकुटिलशिरसिजा, उदितषोडशकलापरिपूर्णशशधरसन्निभवदनबिम्बा, त्रिदशेन्द्रप्रचण्डभुजदण्डसज्जीकृतवक्रकोदण्डसदृशभ्रूलतिका, विकसितचंचलनीलोत्पलदलस्पर्द्धिविशाललोचना, निजद्युतिविस्फुरदमलसुवर्णमुक्ताफलभूषणविभूषित ललिततिलककुसुमसमाननासिकाग्रा, उद्गतप्रवालविद्रुमसदृशसुचि (शुचि) स्मितविराजमानबिम्बाधरा, नानाविधेन्द्रनीलहीरकमाणिक्यरत्नखचितमनोहरोज्ज्वलवर्त्तुलमुक्ताफलहारलम्बमानालङ्कृतरेखात्रयमण्डितकम्बुवद् (म्बु) ग्रीवा, अभिनववरचम्पककुसुमशुभतरद्रुतकनकरुचिनिभगौरवर्णाङ्गा (ङ्गी), अभिनवशिरीषदामोपमबाहुलतिका, प्रथमयौवनोद्भिन्नकर्कशस्तनकलशभरनमितक्षाममध्या । इत्यादिनाभिजघनजानुगुल्फचरणतललावण्यलक्षणोपेतायाः सिद्धयङ्गनाया रूपवर्णनं कृत्वा जिनं प्रति दयानामदूतिकया यथा द्वयोर्विवाहघटना भवति तथोपायं(यः) कर्त्तुमारब्धम (ब्धोऽ) स्ति ।

एवं तस्य मोहस्य वचनमाकर्ण्य विषयव्याप्तो भूत्वा मकरध्वजोऽभणत्—हे मोह, तवत्र संग्रामे जिनेश्वरं जित्वा सिद्धयङ्गनापरिणयनं यद्यहं न करोमि तत् स्वं नाम त्यजामि ।

इत्युक्त्वा पंचविधकुसुमबाणसहितं धनुः करतले गृहीत्वा तत्सङ्ग्रामार्थमगमत् ।

* ४ मोह कहने लगा-महाराज, कन्याके सौन्दर्यके सम्बन्धमें आप क्या पूछते हैं। वह सिद्धसेनकी कन्या है। मुक्ति(सिद्धि) उसका नाम है और सौन्दर्यमें वह अनुपम है। उसका केश-पाश मयूरके गलेके समान नील है, फूलोंके समान कोमल, सघन तथा कुटिल है। उसमें अनेक प्रकारके सुगन्धित कुसुम गुथे हुए हैं, जिनपर यमुना-जलकी तरह काले भ्रमर गुनगुनाया करते हैं। उसका मुख सोलह कलाओंसे पूर्ण उदित चन्द्र जैसा है और भ्रू-लता इन्द्रके प्रचण्ड भुजदण्डमें स्थित टेढ़े धनुषके समान है। उसके नेत्र विशाल हैं और वे विकसित एवं वायु-विकम्पित नील कमलोंसे स्पर्द्धा करते हैं। उसकी नासिका कान्तिमान् है। सुवर्ण और मोतियोंके आभूषणसे भूषित है। तथा तिलक-वृक्ष के कुसुम के समान सुन्दर है। उसका अधर-बिम्ब अमृत-रस से परिपूर्ण है और मन्द तथा शुभ्र स्मितसे विलसित हो रहा है। उसका कण्ठ तीन रेखाओंसे मण्डित है और उसमें अनेक प्रकारके नीले, हरे मणियों तथा सुन्दर उज्ज्वल एवं गोल-गोल मोतियोंसे अलङ्कृत हार पड़े हुए हैं। उसका शरीर चम्पाके अभिनव प्रसूनकी तरह स्वच्छ और तपाये गये सोनेकी कान्तिके समान गौर है। उसकी बाहु-लता नूतन शिरीष-मालाकी तरह मृदुल है और मध्यभाग प्रथम यौवनसे विकसित तथा कठोर स्तन-कलशके भारसे झुका हुआ और कृश है। उसकी नाभि, जघन, घुटने, चरण और चरण-ग्रन्थियाँ लावण्यसे निखर रही हैं। स्वामिन् इसके सिवाय दया नामकी दूती इस बातके लिए कटिबद्ध है कि जिनराज और इस मुक्ति-कन्याका यथाशीघ्र विवाह हो जाय।

मकरध्वज मोहके मुँहसे मुक्ति-कन्याके इस अद्भुत लावण्यका वर्णन सुनकर विषय-व्याकुल हो गया। वह मोहसे कहने लगा-मोह,

यदि यह बात है तो तुम मेरी प्रतिज्ञा भी सुन लो। 'मैं निश्चय करता हूँ कि यदि आजकी लड़ाईमें जिनराजको जीत कर मैंने मुक्ति-कन्याके साथ विवाह नहीं किया तो मैं मकरध्वज ही किस कामका ?'

यह कहकर मकरध्वजने कुसुम-बाणवाला धनुष हाथमें लिया और जिनराजसे संग्राम करनेके लिए चल पड़ा।

*५ अथैवं तमुत्सुकत्वेन निर्गच्छन्तमवलोक्य मोहोऽजल्पत्-देव, वचनमेकं शृणु। निजबलमज्ञात्वा संग्रामार्थं न गम्यते।

उक्तं च, यतः–

"स्वकीयबलमज्ञाय सङ्ग्रामार्थन्तु यो नरः।
गच्छत्यभिमुखो नाशं याति वह्नौ पतङ्गवत् ॥५॥"

तथा च–

"भृत्यैर्विरहितो राजा न लोकानुग्रहप्रदः।
मयूखैरिव दीप्तांशुस्तेजस्व्यपि न शोभते ॥६॥"

अन्यच्च–

"न विना पार्थिवो भृत्यैर्न भृत्याः पार्थिवं विना।
एतेषां व्यवहारोऽयं परस्परनिबन्धनः ॥७॥"

तथा च–

"राजा तुष्टोऽपि भृत्यानामर्थमात्रं प्रयच्छति।
तेन (ते तु) सम्मानमात्रेण प्राणैरप्युपकुर्वते ॥८॥
एवं ज्ञात्वा नरेन्द्रेण भृत्याः कार्या विचक्षणाः।
कुलीनाः शौर्यसंयुक्ताः शक्ता भक्ताः क्रमागताः ॥९॥"

तथा च–

"न भवेद्बलमेकेन समवायो बलावहः।
तृणैरेव कृता रज्जुर्यया नागश्च बद्ध्यते ॥१०॥

एवं तस्य वचनमाकर्ण्य सबाणं कार्मुकं परित्यज्योपविष्टः। ततो मोहं प्रत्यवोचत्-भो मोह, यद्येवं तत्त्वं सकलसैन्यमेलनं कृत्वा द्रुततरमागच्छ।

ततो मोहो जजल्प-देव, एवं भवति युक्तम्। एवमुक्त्वा तं मकरध्वजं प्रणम्य निर्गतः। अथ मोहमल्ले गते सति मकरध्वजः श्रुतावस्था व्याप्तः श्लोकमेन(म)पठत्-

"मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
तस्याः पयोधरयुगे रतिखेदखिन्नः।
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
स्वप्स्ये कदा क्षणमहं क्षणदावसाने॥११॥"

* ५ जब मोहने देखा कि मकरध्वज जिनराजसे लड़ाई लड़ने चल ही पड़ा है तो वह कहने लगा-'अरे महाराज, आप इस प्रकार उत्सुकतासे कहाँ जा रहे हैं? मेरी बात तो सुनिए। अपनी शक्तिको बिना पहिचाने युद्धके लिए नहीं जाना चाहिए। कहा भी है:—

"जो मनुष्य अपने बलका विवेक न रखकर युद्धके लिए तैयार होता है वह अग्निके सम्मुख आए हुये कीट-पतंगकी तरह भस्म हो जाता है।" और—

"जिस प्रकार तेजस्वी भी सूर्य किरणोंके अभावमें न स्वयं ही सुशोभित हो सकता है और न प्रकाश ही कर सकता है उसी प्रकार भृत्योंके बिना राजा भी लोकका उपकार नहीं कर सकता।" अथ च—

"राजाका भृत्योंके बिना काम नहीं चल सकता और भृत्योंका राजाके बिना। इस प्रकार राजा और भृत्योंकी स्थिति एक-दूसरे के आश्रित समझनी चाहिए।" साथ ही—

"राजा भृत्योंसे प्रसन्न होकर उन्हें केवल धन ही देता है। लेकिन भृत्य यदि राज-सम्मानित होते हैं तो अवसर आनेपर राजाके लिए अपने प्राण तक निछावर कर डालते हैं।"

इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए राजाका कर्तव्य है कि वह कुशल, कुलीन, शूरवीर, समर्थ, भक्त और परम्परासे चले आये हुए भृत्योंको अपने यहाँ स्थान दे। क्योंकि नीतिकारों का कथन है–

"बलाधान एकसे नहीं होता। बलके लिए समुदाय वाञ्छनीय रहता है। अकेला तिनका कुछ नहीं कर सकता। लेकिन रस्सीके रूपमें उन्हीं तिनकोंका समवाय हाथीको भी बन्धनमें रखता है।"

मोह कहता गया–'इसलिए आपको अकेले समर-भूमिमें नहीं उतरना चाहिए।'

मोहकी बात सुनकर मकरध्वजने धनुष-बाण एक ओर रख दिया और अपने आसनपर बैठ गया। वह मोह-से फिर कहने लगा-मोह, यदि तुम्हारा इस तरहका आग्रह है तो समस्त सैन्य तैयार करके तुम यहाँ जल्दी आओ।

मोह मकरध्वजसे कहने लगा-महाराज, अब कही है आपने ठिकानेकी बात। लीजिए, मैं यह चला। इतना कहकर उसने मकर-ध्वजको प्रणाम किया और वह वहाँसे चल पड़ा।

मोह-योद्धाके चले जानेके पश्चात् मकरध्वज इस प्रकार गंभीर चिन्तामें निमग्न हो गया–

"वह सोचने लगा-वह समय कब आवेगा जब रात्रिके पिछले समय रति-खेदसे खिन्न होकर मैं क्षणभरके लिए मदमत्त हाथीके गण्डस्थलके समान विशाल और कुंकुमसे आर्द्र मुक्ति-कन्याके स्तन-युगपर अपना मुख रखकर उसकी भुजाओंमें बँधा रहूँगा।"

* ६ एवंविधमुच्चलितचित्तं शोकज्वरसन्तप्ताङ्गमतिक्षीणकायं दृष्ट्वा रतिरमणो प्रीतिसखीं प्रत्यपृच्छत्—हे सखि, साम्प्रतमस्मद्भर्ताऽयमुच्चलितचित्तश्चिन्तापरिपूर्णः। कथमेतत्? तदाकर्ण्य प्रीतिः सखीं प्रत्याह—हे सखि, कीदृशावस्थया व्याप्तोऽयमस्त्येवं न जानामि। तत् किमनेन व्यापारेण प्रयोजनम्? उक्तं च यतः—

"अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्त्तुमिच्छति।
स एव निधनं याति यथा राजा ककुद्रुमः ॥१२॥"

अथ रतिराह--हे सखि, अयुक्तमेतत् त्वयोक्तम्। यत एवं पतिव्रताधर्मो न भवति। अथ सा प्रीतिरब्रवीत्—हे सखि, यद्येवं तर्हि त्वमेव पृच्छां कुरु। एवं सखीवचनमाकर्ण्यैकदा शय्यागारे शयनस्थमनङ्गं रजन्यां प्रश्नार्थं रतिरालिलिङ्ग। तद्यथा—

यद्वत् पर्वतनन्दना पशुपतेरालिङ्गनंचाकरो,
दिन्द्राणी त्रिदशाधिपस्य हि यथा गङ्गानदी चाम्बुधेः।
सावित्री कमलोद्भवस्य तु यथा लक्ष्मीर्यथा श्रीहरे-
रिन्दो रोहिणिसंज्ञिका फणिपतेर्देवी च पद्मावती ॥७॥

एवञ्च समालिङ्ग्य तमपृच्छत्-देव, युष्माकं साम्प्रतं न चाहारः, न निद्रा, न शय्योपरि चित्तम्, तत्कथमेतत्? अन्यच्च—

त्वया को न जितो लोके, त्वया का स्त्री न सेविता।
सेवा ते न कृता केन, तदवस्थाग्विलोऽसि किम् ॥८॥

* ६ एक बार, मकरध्वजकी पत्नी रतिने देखा कि मकरध्वजका चित्त अत्यन्त चंचल हो गया है, शरीर शोकसे संतप्त रहने

लगा है और एकदम क्षीण भी हो गया है। उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह अपनी प्रिय सखी प्रीतिसे पूछने लगी–सखि, पता नहीं, अपने पतिदेवको क्या हो गया है? देखती नहीं, यह रोज ही चिन्तित और चलचित्त बने रहते हैं।

रतिकी बात सुनकर प्रीतिने कहा–सखि, मालूम नहीं, प्राणनाथकी इस प्रकारकी अवस्था क्यों हो गयी है? कदाचित् उनके सिर कोई महान् कठिन कार्य आ पड़ा हो। जो हो, हमें उनकी इस प्रवृत्ति में हस्तक्षेप करनेकी कोई जरूरत नहीं मालूम देती। कहा भी है–

"जो मनुष्य अप्रयोजनीय कार्योंमें अपनी टाँग अड़ाता है उसकी ककुद्रुम राजाकी तरह दुर्दशा होती है।"

रतिने प्रीतिसे कहा–सखि, तुमने यह ठीक बात नहीं कही। पतिव्रताओंका यह धर्म नहीं है कि वे पतिकी किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।

उत्तरमें प्रीतिने कहा–सखि, यदि यह बात है तो प्राणनाथसे तुम ही पूछो कि वे इतने चिन्तित और खिन्न क्यों बने रहते हैं?

रतिने सखीकी बात ध्यानमें रख ली।

एक बार रातके समय महाराज मकरध्वज शयनागारमें शय्यापर लेटे हुए थे। इतनेमें रति अपनी शङ्का समाहित करनेके लिए मकरध्वजके पास पहुँची। वहाँ जाकर वह मकरध्वजका इस प्रकार आलिङ्गन करने लगी जिस प्रकार पार्वती महादेवका, इन्द्राणी इन्द्रका, गङ्गा समुद्रका, सावित्री ब्रह्माका, लक्ष्मी श्रीकृष्णका, रोहिणी चन्द्रका और पद्मावती नागेन्द्रका आलिङ्गन करती है।

रतिने इस प्रकार आलिङ्गन करनेके बाद मकरध्वजसे पूछा–महाराज, आज-कल न आप ठीक भोजन करते हैं, न ठीक नींद लेते

है और न राज-काजमें ही आपका चित्त लगता है। सो क्या कारण है? क्योंकि आप स्वयं जानते हैं—

"संसारमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो तुम्हारे वशीवर्ती न हो। ऐसी कोई स्त्री नहीं जिसका तुमने उपभोग न किया हो। साथ ही इस प्रकारका कोई मनुष्य भी नहीं है जिसने तुम्हारी सेवा न की हो। फिर समझमें नहीं आता कि आपकी इस प्रकारकी अवस्था क्यों हो गयी है?"

*** ७ एवं तया पृष्टो मकरध्वजो वचनमेतदूचे—प्रिये, किं तवानेन व्यापारेण? ममावस्थामपहर्तुमेवंविधः कोऽस्ति? तच्छ्रुत्वा रतिरजल्पत्—काऽवस्था लग्नास्ति ते? तदवश्यं कथ्यताम्। स आह—प्रिये, यदा संज्वलनेन विज्ञप्तिका प्रेषिता तदा सिद्ध्यङ्गनारूपलावण्यवर्णनं श्रुत्वा तद्दिनप्रभृति मम भूताऽवस्था लग्ना। तत्किं करोमि?**

अथ रतिराह—हे देव, तत्त्वयात्मनो वृथा शरीरशोषः कृतः। यतो मोहमल्लसदृशे सचिवे सति गुह्यमेतन्न कथयसि। उक्तं च यतः—

"जनन्या यच्च नाख्येयं कार्यं तत् स्वजने जने।
सचिवे कथनीयं स्यात् कोऽन्यो विश्रम्भ भाजनः ॥१३॥

ततः पंचेषुरूचे—हे प्रिये, मोहेनापि ज्ञातमेतद् गुह्यम्। तन्मया सकलसैन्यमेलनार्थं प्रेषितोऽस्ति। तद्यावत् स नागच्छति तावत्तत्र गत्वा यथा भामिच्छति तथोद्यमस्त्वया कर्त्तव्यः। यत उद्यमात् सकलं भवति। उक्तं च यतः—

"उद्योगिनं सततमत्र समेति लक्ष्मी,
दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।

दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।।१४।।"

तथा च–

"रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगा
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि ।।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ।।१५।।"

अन्यच्च, यतस्त्वया स्वभावेन पृष्टोऽहं तस्मान्मया कथितम् । तद्यदि ममार्त्तिमपहरसि तत्त्वं पतिव्रता भवसि ।

* ७ जब रतिने बड़े अनुनय-विनयके साथ मकरध्वजसे इस प्रकारकी बात पूछी तो उत्तरमें मकरध्वजने कहा—तुम हमसे यह बात क्यों पूछती हो ? ऐसा कौन है जो मेरी यह अवस्था दूर कर सके ?

मकरध्वजकी बात सुनकर रतिने कहा–प्राणनाथ, बतलाइए तो आपकी यह हालत क्यों और कैसे हो गयी ?

मकरध्वज कहने लगा–प्रिये, जिस दिन मैंने संज्वलनके द्वारा लायी गयी विज्ञप्ति पढ़ी और सिद्धि कन्याके रूप एवं लावण्यका मनोहर विवेचन सुना उसी दिनसे मेरी यह शोचनीय स्थिति हो गयी है । समझमें नहीं आता कि अब मैं क्या करूँ ?

रतिने कहा–यदि यह बात है तो आपने व्यर्थ ही शरीरको सुखाया । जब मोह-सरीखे सुभट आपके मन्त्री हैं तो यह रहस्यपूर्ण समाचार आपने उन्हें क्यों नहीं बतलाया ? नीतिकार ने कहा है–

"जो बात माताको नहीं बतलायी जा सकती उसे अपने स्वजन से कह देना चाहिए और मन्त्रीसे तो अवश्य ही कह देना

चाहिए। भला, मन्त्रीको छोड़कर अन्य कौन विश्वास-पात्र हो सकता है ?"

मकरध्वज उत्तरमें कहने लगा–हे प्रिये, यह समाचार मोहसे भी छिपा नहीं है। उसे इस रहस्यका पूरा पता है। मैंने उसे हाल ही समस्त सैन्य तैयार करने के लिए भेजा है। पर तुमसे भी मुझे एक बात कहनी है। जब तक मोह समस्त सैन्य तैयार करके वापिस नहीं आता है, तब तक तुम सिद्धि-कन्याके पास जाकर इस प्रकारका यत्न करो जिससे वह जिनराजसे विमुख हो जावे और अपने विवाहोत्सवके अवसरपर मुझे ही अपना जीवन-संगी चुने। मुझे विश्वास है, तुम्हारा उद्योग अवश्यमेव सफल होगा। नीति-विदोंका कहना है :—

"लक्ष्मी उद्योगी मनुष्यको ही प्राप्त होती है। यह अकर्मण्यों-का कथन है कि सब कुछ भाग्यसे ही मिलता है। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह दैवको एक ओर रख कर अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करे। यत्न करनेपर भी यदि सफलता नहीं मिलती है तो इसमें मनुष्यका कोई अपराध नहीं।" अथ च —

"जिसके रथमें केवल एक पहिया है और साँपोंसे बंधे हुए सात घोड़े हैं। मार्गमें कोई अवलम्ब नहीं है। सारथी भी एक पैर-वाला है। इस प्रकारका सूर्य भी प्रति दिन अपार आकाशके एक छोरसे दूसरे छोर तक आता-जाता है। इसलिए यह निर्विवाद है कि महान् पुरुष अपने बलसे ही कार्य सिद्ध करते हैं, दूसरोंके आश्रयसे नहीं।"

प्रिये, तुमने मुझे अपना समझकर सहज भावसे मेरी बात पूछी, इसलिए ही मैंने सब कुछ बतला दिया। अब यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम मेरी मनोव्यथा दूर कर मुझे सुखी करो। इसमें ही तुम्हारा पातिव्रत्य निहित है।

§ ८ ततो रतिरब्रवीत्-भो देव, युक्तायुक्तं किंचिन्न जानासि । उक्तं च'–

"स्वाधीनेऽपि कलत्रे नीचः परदारलम्पटो भवति ।
सम्पूर्णेऽपि तडागे काकः कुम्भोदकं पिबति ॥१६॥"

अथ किं त्वयाऽपि स्वभाववृत्तत्वमस्ति ? तच्छ्रुत्वा कन्दर्पोऽब्रवीत्–हे प्रिये, युक्तमेतत् त्वयोक्तम् । परं किन्तु त्वया विना कार्यमिदं न भवति । यतस्त्रीभिः स्त्रियो विश्वासमायान्ति । उक्तं च यतः–

"मृगैर्मृगाः सङ्गमनुव्रजन्ति स्त्रियोऽङ्गनाभिस्तुरगास्तुरङ्गैः ।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः समानशीलव्यसनेषु सख्यम्
॥१७॥"

तद्वचनं श्रुत्वा सचिन्ता भूत्वा रतिरभणत्-देव, सत्यमिदमुक्तं भवता । परं किन्तु यद्येवं दर्शयसि तर्हि सिद्धिभार्या भवति ।

"काके शौचं द्यूतकारेषु सत्यं सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशांतिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता यद्येवं स्यात् तद्भवेत् सिद्धिरामा
॥१८॥"

अन्यच्च, सा सिद्ध्यङ्गना जिननाथं वंचयित्वाऽन्येषां नामपृच्छामपि न करोति । उक्तं च यतः–

"ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्राद्यैं रागाद्यैश्च कलङ्किताः ॥
निग्रहाऽनुग्रहपराः सा सिद्धिस्तान् न वाञ्छति ॥१९॥"

तत्किं वृथाऽनेनालोन प्रयोजनम् ? उक्तं च यतः—

"व्यर्थमार्त्तं न कर्त्तव्यमार्त्तात्तिर्यग्गतिर्भवेत्
यथाऽभूद्धेमसेनाख्यः पक्वे चैर्वारुके कृमिः ॥२०॥"

※ ५ पतिदेवकी बात सुनकर रति बड़े असमंजसमें पड़ गयी। वह कहने लगी–स्वामिन्, आपको उचित-अनुचितका कोई विवेक नहीं है। नीतिकारोंने ठीक ही कहा है :—

"अपनी पत्नीके सुलभ रहनेपर भी नीच पुरुष सन्तोषकी साँस नहीं लेता। इसपर भी वह पर-स्त्री-लम्पट बनता है। कौवाका भी तो यही हाल है। उसे भरे हुए तालाबका पानी पसन्द नहीं। घड़ेके सड़े हुए पानीसे ही उसे सन्तोष होता है।"

रति कहने लगी–देव, फिर क्या किसीने कभी अपनी पत्नीसे भी दूतका काम लिया है, जो कार्य आप मुझे सौंपने चले हैं ?

मकरध्वजने कहा–प्रिये, तुमने बात तो बिलकुल सच कही है, लेकिन तुम्हीं सोचकर बतलाओ, क्या यह कार्य तुम्हारे बिना संभव है ? यह कार्य मैं तुम्हें इसलिए सौंप रहा हूँ कि स्त्रियाँ ही स्त्रियोंके प्रति अधिक विश्वासशील देखी जाती हैं। कहा भी है—

"हिरन हिरनोंका सहवास पसन्द करते हैं, स्त्रियाँ स्त्रियोंका, घोड़े घोड़ोंका, मूर्ख मूर्खोंका और विद्वान् विद्वानोंका। ठीक है, मित्रता समानशील-व्यसनवालोंमें हुआ करती है।"

मकरध्वजकी बात सुनकर रतिको बड़ी चिन्ता हुई। उसने मकरध्वजसे कहा- देव, आप ठीक कहते हैं। परन्तु आपको मुक्ति-कन्या प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि जिस प्रकार–

"कौवामें पवित्रता, जुवारियोंमें सत्य, सर्पमें क्षमा, स्त्रियोंमें कामकी उपशान्ति, नपुंसकमें धैर्य और मद्य पीनेवालेमें विवेकबुद्धि नहीं हो सकती उसी प्रकार सिद्धि-कन्या भी तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती।"

फिर देव, वह सिद्धि-कन्या जिनराजको छोड़कर और किसीका नाम तक नहीं लेती है। अन्यको वरण करनेकी तो बात ही छोड़िए। सिद्धि-कन्याके सम्बन्धमें कहा भी जाता है :–

"जो देव, स्त्री, शस्त्र, जप-माला और राग-द्वेषसे कलङ्कित हैं तथा निग्रह और अनुग्रहमें तत्पर रहते हैं, सिद्धि-कन्या उनके पास फटकती तक नहीं है।"

रति कहने लगी–देव, इसलिए मेरी आपसे विनय है कि आप व्यर्थमें आर्त्तध्यान न कीजिए; कहा भी है :—

"व्यर्थमार्त्तं न कर्त्तव्यमार्त्तात्तिर्यग्गतिर्भवेत् ।
यथाऽभूद्धेमसेनाख्यः पक्वे चैर्वारुके कृमिः ॥"

"निष्प्रयोजन आर्त्तध्यान नहीं करना चाहिए। क्योंकि आर्त्त-ध्यानके कारण पशु-पर्यायमें जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार आर्त्त-ध्यान करनेसे हेमसेन मुनि पके हुए खरबूजाके कीड़ा बने।"

❀ ९ अथ कामोऽब्रवीत्–कथमेतत् ? साऽब्रवीत्–

अस्ति कस्मिंश्चित् प्रदेशे चम्पानाम नगरी सततप्रवृत्तोत्सवा प्रभूतवरजिनालयजिनधर्माचारोत्सवसहितश्रावका घनहरिततरुखण्डमण्डिता, सकलभूमिभागोत्संगसञ्चरद्वरविलासिनीविलासचलितचतुरचरणरणितनूपुररसनारवबधिरितदिगन्तराला, वर्णत्रयगुणशुश्रूषाशूद्रजनपरिपालितजनपदा, नानाविषयागतानेकपात्रवैदेश्यसार्थसमस्तज्ञानसम्पन्नोपाध्यायशतशोभिता, प्रचुरपुरवधूवदनचन्द्रज्योत्स्नोल्लासितवसुधाधवलमालोपशोभिता। एवंविधायां नगर्यां हेमसेननामानो मुनयः कस्मिंश्चिज्जिनालये महोग्रं तपश्चरणं कुर्वन्तो हि तस्थुः। एवं तेषां तपश्चरणक्रियावर्त्तमानानां कतिपयैर्दिवसैर्मृत्युकालः प्राप्तः। अथ यावत्तेषामासन्नमृत्युर्वर्त्तते, तावत्तस्मिंश्चैत्यालये श्रावकजना विविधकुसुमफलाद्यैराराधनापूजां चक्रिरे। ततोऽनन्तरं प्रतिमैकायाश्चरणोपरि सुपक्वमेकमैर्वारुकं यत्

स्थापितमासीत् तद्गन्धजनितार्त्तेन प्राणान् परित्यज्य तत्क्ष-णात्तस्मिन्नेवेर्वारुकमध्ये कृमिर्जज्ञिरे । ततः श्रावकजना मिलित्वा महोत्सवपूर्वकं शरीरसंस्कारं चक्रिरे ।

* ६ कामने कहा—यह कैसी बात ? रतिने कहा—प्राणनाथ, सुनिए। और वह कहने लगी—

किसी प्रदेशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस पुरीमें प्रतिदिन उत्सव हुआ करते थे। यह दिव्य जिनालयोंसे विभूषित थी और जैन धर्माचारका आचरण करनेवाले श्रावकोंसे महनीय थी। एक ओर इसमें सघन और हरित वृक्षावली लहरा रही थी तो दूसरी ओर समस्त भूखण्डके उत्सङ्गमें विहार करनेवाली रमणीय रमणियोंके विलास-चलित चतुर चरणोंमें रणित होनेवाले नूपुरोंकी रुनझुन दिगन्तरालमें झनझना रही थी। एक ओर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्गके गुणोंमें अनुरागशील शूद्रजनोंका निवास था तो दूसरी ओर अनेक देश तथा विदेशोंसे सुपात्र और ज्ञानपिपासु विद्यार्थी भी यहाँ झुण्ड-के-झुण्ड आ रहे थे। यह नगरी विभिन्न विषयोंके सैकड़ों अधिकारी विद्वानोंसे अलंकृत थी और पुर-वधुओंके मुख चन्द्रकी ज्योत्स्नासे प्रकाशित वसुधाकी धवल सौधमालासे सुशोभित थी।

इस चम्पानगरीमें हेमसेन नामके एक मुनिराज किसी जिना-लयमें कठोर तपस्या करते थे। इस प्रकार कठिन तप करते-करते उन्हें बहुत दिन बीत गये और कुछ दिनोंके बाद उनकी मृत्यु-वेला आ पहुँची। जब मुनिराजकी मृत्युका समय अति सन्निकट आ पहुंचा तो समस्त श्रावक वहाँ एकत्रित हो गये और वे अनेक प्रकारके फूल-फल आदिसे उनकी आराधना तथा पूजा करने लगे।

संयोगकी बात है, जिस दिन हेमसेन मुनिराज दिवंगत होने जा रहे थे उस दिन उस चैत्यालयमें भगवान्की प्रतिमाके सामने एक

पका हुआ खरबूजेका फल चढ़ाया हुआ रक्खा था। खरबूजा इतना पका हुआ था कि उसकी सुगंध मुनिराजके पास पहुँची और उनका मन उस फलकी ओर ललचा गया। इस फल-प्राप्तिकी आर्त चिन्तामें ही विचारे मर गये और मरकर तत्क्षण उस फलके अन्दर कीड़ा हो गये। श्रावकोंने मिलकर बड़े उत्सवके साथ मुनिराजका शरीर-संस्कार कर दिया।

* १० ततो द्वितीयदिने येऽन्ये चन्द्रसेननामानः साधवस्तिष्ठन्ति तान्प्रति श्रावकाः पृच्छां कर्त्तुमारब्धाः—अहो, हेमसेनैरिमै (रेभि) र्मरणपर्यन्तमस्मिश्चैत्यालये महोग्रं तपश्चरणं कृतम्। तत्तपःप्रभावादधुना कां गतिमवापुरेषमवलोकनीयो (यं) भवद्भिः।

अथ ते कालज्ञानसम्पूर्णा मुनयो यावत् पश्यन्ति मोक्षे स्वर्गे पाताले नरके। एतेषु स्थानेषु यदा न तिष्ठन्ति तदा ते विस्मितमानसा बभूवुः। ततो भूयोऽपि यदा पश्यन्ति तदा तत्रैव चैत्यालये सर्वज्ञचरणोपरि पक्वैर्वारिकमध्ये कृमिरूपेण समुत्पन्नाः सन्ति। एवं स्फुटं ज्ञात्वा श्रावकान् प्रत्यभिहितम्—अहो, अस्मिन्नेव चैत्यालये सर्वज्ञचरणोपरि पक्वैर्वारिकमध्ये कृमिरूपेण समुत्पन्नाः सन्ति।

एवं तच्छ्रुत्वा तत्क्षणात् तर्व (वे) र्वारिकं भित्वा यावदवलोकयन्ति ते तावत् कृमिरूपमस्ति। अथ ते विस्मितचेतसो भूत्वा श्रावकाः पुनरूचुः—भो स्वामिन्, एवमिमै (एभि)-र्हेमसेनैर्महोग्रं तपश्चरणं कृतम्। तत्प्रभावादीदृशाया गतेः सम्भवार्थं किं कारणमिदम्? तदाकर्ण्य चन्द्रसेनमुनयः प्राहुः—अहो, यद्यपि महोग्रं तपश्चरणं क्रियते तथापि ध्यानं बलवत्तरमिति। उक्तञ्च यतः—

"आर्त्ते च तिर्य्यग्गतिमाहुरार्या रौद्रे गतिः स्यात् खलु नारकी च ।
धर्मे भवेद्देवगतिर्नराणां ध्याने च जन्मक्षयमाशु शुक्ले ॥२१॥"

* १० दूसरे दिन समस्त श्रावक जिनालय पहुँचे और मुनिराज हेमसेनके साथ रहनेवाले चन्द्रसेन आदि मुनियोंसे इस प्रकार पूछने लगे—'महाराज, मुनिराज हेमसेनने मरणपर्यन्त अत्यन्त दुष्कर तपस्या की था। कृपया बतलाइए, अब वे किस पर्यायमें विराजमान हैं?'

मुनिराज अतीत, वर्तमान और भविष्यत्के ज्ञाता थे। उन्होंने ध्यान लगाया और अवधिसे मोक्ष, स्वर्ग और पाताल तथा समस्त संभव स्थानोंमें हेमसेन महाराजकी खोज की, पर वे वहाँ नहीं मिले। चन्द्रसेन आदि समस्त मुनिनाथ बड़े विस्मित हुए। किन्तु जैसे ही उन्होंने पुनः अवधि लगायी तो मालूम हुआ कि हेमसेन महाराज जिन भगवान्के आगे समर्पित किये गये पके खरबूजेमें कीट हुए हैं। चन्द्रसेन मुनि श्रावकोंसे कहने लगे:—'भाइयों, आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हेमसेन मुनिराज इसी मन्दिरमें जिनेन्द्र भगवान्के आगे रक्खे हुए खरबूजेमें कीट पर्यायसे उत्पन्न हुए हैं।'

मुनि चन्द्रसेनकी बात सुनकर श्रावक उस खरबूजेको भगवान्के सामनेसे उठा लाये और उसे फोड़कर देखा तो उसमें उन्हें एक कीड़ा दिखलायी दिया।

इस घटनासे श्रावकोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे चन्द्रसेन मुनिसे पूछने लगे—महाराज, हेमसेन मुनिराजने जीवन भर उग्र तपस्या की। फिर उन्हें इसप्रकारके कीट पर्यायमें क्यों जन्म लेना पड़ा? महर्षि चन्द्रसेन कहने लगे:—यद्यपि उग्र तपस्या एक महान् वस्तु है।

लेकिन उससे अधिक बलवत्तर है ध्यान-एकाग्र चिन्ता-निरोध। आगममें कहा है :—

१"आर्त ध्यानसे पशु पर्याय मिलती है और रौद्र ध्यानसे नरक-गति। धर्म ध्यानसे देवगति प्राप्त होती है और शुक्ल ध्यानसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।"

*** ११ तदाकर्ण्य श्रावकाः प्राहुः—भगवन् कीदृशमार्त्तं ध्यानम्, कीदृशं रौद्रध्यानम्, कीदृशं धर्मध्यानम्, कीदृशं शुक्ल-ध्यानम्? इति सर्वं प्रकटमस्मान् प्रति कथनीयम्।**

अथ ते ध्यानचतुष्कस्य निदर्शनं तान्प्रति निवेदयन्ति स्म। तद्यथा—

वसनशयनयोषिद्रत्नराज्योपभोग—
प्रवरकुसुमगन्धानेकसद्भूषणानि।
सदुपकरणमन्यद्वाहनान्यासनानि,
सततमिति य इच्छेद् ध्यानमार्त्तं तदुक्तम् ॥९॥

गगनवनधरित्रीचारिणां देहभाजां
दलनदहनबन्धच्छेदघातेषु यत्नम्।
इति नखकरनेत्रोत्पाटने कौतुकं यत्
तदिह गदितमुच्चैश्चेतसां रौद्रमित्थम् ॥१०॥

दहनहननबन्धच्छेदनैस्ताडनैश्च
प्रभृतिभिरिह यस्योपैति तोषं मनश्च।
व्यसनमति सदाऽघे, नानुकम्पा कदाचि-
न्मुनय इह तदाहुर्ध्यानमेवं हि रौद्रम् ॥११॥

श्रुतसुरगुरुभक्तिः सर्वभूतानुकम्पा
स्तवननियमदानेष्वस्ति यस्यानुरागः।

मनसि न परनिन्दा रिन्द्रियाणां प्रशान्तिः
कथितमिह हितशेध्यानमेवं हि धर्म्म् ॥१२॥
खलु विषयविरक्तानीन्द्रियाणीति यस्य
सततममलरूपे निर्विकल्पेऽव्यये यः ।
परमहृदयशुद्धध्यानतल्लीनचेता
यतय इति वदन्ति ध्यानमेवं हि शुक्लम् ॥१३॥

तदवश्यं यादृशं ध्यानमन्तकाले चोत्पद्यते तादृशी गति-र्भवति । अन्यच्च—

मरणे या मतिर्यस्य सा गतिर्भवति ध्रुवम् ।
यथाऽभूज्जिनदत्ताख्यः स्वाङ्गनार्त्तेन दर्दुरः ॥१४॥

अथ ते श्रावकाः प्रोचुः—भगवन् कथमेतत् ? ते मुनयः प्रोचुः—

* ११ चन्द्रसेनकी बात सुनकर श्रावक कहने लगे:-महाराज, आप हम लोगोंको विस्तारसे बतलाइए कि आर्तध्यान, रौद्रध्यान धर्मध्यान और शुक्लध्यानसे आपका क्या आशय है और इनका क्या स्वरूप है ?

चन्द्रसेन चारों ध्यानका स्वरूप समझाने लगे :—

"वसनशयनयोषिद्रत्नराज्योपभोग-
प्रवरकुसुमगन्धानेकसद्भूषणानि ।
सदुपकरणमन्यद्वाहनान्यासनानि
सततमिति य इच्छेद् ध्यानमार्त्तं तदुक्तम् ॥"

"जो व्यक्ति सदा वस्त्र, शय्या, स्त्री, रत्न, राज्य, भोगोपभोग, उत्तमोत्तम पुष्प, सुगन्धित द्रव्य, विविध आभूषण, सुन्दर उपकरण, प्रशस्त सवारी और मृदुल आसन आदि प्राप्त करनेकी सदैव इच्छा करता रहता है उसका ध्यान आर्तध्यान कहलाता है ।" और—

"गगनवनधरित्रीचारिणां देहभाजां
दलनहननबन्धच्छेदघातेषु यत्नम् ।
इति नखकरनेत्रोत्पाटने कौतुकं यत्
तदिह गदितमुच्चैश्चेतसां रौद्रमित्थम् ।।"

"जिसका प्रयत्न सदैव नभचर, जलचर और थलचर प्राणियोंको पीस डालनेमें, मार डालनेमें, बाँध देनेमें, छेदन करनेमें और घात करने में रहता है तथा जो व्यक्ति इन प्राणियोंके नाखून, हाथ और नेत्र आदिके भङ्ग करनेमें कौतुक रखते हैं उनका चिन्तन रौद्र ध्यान कहलाता है ।" तथा–

"दहनहननबन्धच्छेदनैस्ताडनैश्च
प्रभृतिभिरिह यस्योपैति तोष मनश्च ।
व्यसनमति सदाऽघे नानुकम्पाकदाचि–
न्मुनय इति तदाहुर्ध्यानमेवं हि रौद्रम् ।।"

"जिस व्यक्तिका मन निरन्तर जलाने, मारने, बाँधने छेदने और ताड़न करने आदिमें ही निमग्न रहता है, पापमें जो तन्मय रहता है और दया जिसे छू नहीं गयी है उस व्यक्तिका ध्यान रौद्रध्यान समझना चाहिए ।" और–

श्रुतसुरगुरुभक्तिः सर्वभूतानुकम्पा
स्तवननियमदानेष्वस्ति यस्यानुरागः ।
मनसि न परनिन्दा स्वेन्द्रियाणां प्रशान्तिः
कथितमिह हितज्ञैर्ध्यानमेवं हि धर्मम् ।।

"जो मनुष्य निरन्तर देव, शास्त्र और गुरुकी भक्ति करता है, समस्त जीवधारियोंपर दया करता है, स्तुति, नियम और त्यागमें अनुरागवान् है, जो परनिन्दा नहीं करता तथा इन्द्रियाँ जिसके वशवर्ती हैं, उस पुरुषका ध्यान धर्मध्यान कहलाता है । तथा–

खलु विषयविरक्तानीन्द्रियाणीति यस्य
सततममलरूपे निर्विकल्पेऽव्यये यः ।
परमहृदयशुद्धध्यानतल्लीनचेता
यतय इति वदन्ति ध्यानमेवं हि शुक्लम् ॥

'जिसकी इन्द्रियाँ सम्पूर्ण विषय-वासनाओंसे विरत हो गयी हैं, जो निरन्तर शुद्ध, निर्विकल्पक और अविनश्वर पदकी ओर उन्मुख है और जिसका पवित्र मन शुद्ध आत्मध्यान में तन्मय है, उस पुरुषका ध्यान शुक्लध्यान कहलाता है।'

मुनिराज चन्द्रसेन कहते गये–श्रावको, इसलिए यह सुनिश्चित है कि "प्राणान्त समय प्राणीका जिस प्रकारका ध्यान रहता है, उसे उसी प्रकारका गति-बन्ध हुआ करता है।"

आगममें भी इस बातका समर्थन मिलता है :–

"मरणे या मतिर्यस्य सा गतिर्भवति ध्रुवम् ।
यथाऽभूज्जिनदत्ताख्यः स्त्र्यार्तेन ददुरः ॥"

"मरण-समयमें जिसकी जैसी मति होती है उसकी गति भी निश्चयसे उसी कोटिकी होती है। जिस प्रकार जिनदत्त अपने स्त्री-सम्बन्धी आर्तध्यानके कारण मेंढक हुआ।"

श्रावकोंने कहा–भगवन् यह घटना किस प्रकारकी है? मुनिराज कहने लगे :–

* १२ अस्ति कस्मिंश्चित् प्रदेशे राजगृहं नाम नगरम् । तत्र च जिनचरणयुगलविमलकमलपरमशिवसुखर-सास्वादनलीनमत्तमधुकरजिनदत्तश्रेष्ठिनामा श्रावकः प्रतिव-सति स्म । तस्यैका प्राणप्रिया स्वरूपनिर्जितसुरेशाङ्गनेत्या-द्यनेकापूर्वरूपा जिनदत्ताख्या भार्या तिष्ठति । एवं तस्य

सागारधर्मक्रियावर्त्तमानस्य जिनदत्तस्य कतिपयैरहोभिरन्त-कालः प्राप्तः ततोऽनन्तरं यावत्तस्य प्राणनिर्गमनकालो वर्त्तते, तावत्तस्मिन्नवसरे निजललनाद्रूतलावण्यमवलोक्यार्त्तध्यानः सन्नेवंविधमवोचत् । तद्यथा–

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां
स्तनतटपरिपूर्णं यौवनं वा वनं वा ॥१५॥

एषा स्त्रीषु मनोहराऽतिसुगुणा संसारसौख्यप्रदा
वाङ्माधुर्ययुता विलासचतुरा भोक्तुं न लब्धा मया ।
दैवं हि प्रतिकूलतां गतमलं धिग् जन्म मेऽस्मिन्भवे
यत्पूर्वं खलु दुस्तरं कृतमघं दृष्टं मयैतद् ध्रुवम् ॥१६॥

तथा च–

असारे खलु संसारे सारं शीताम्बु चन्द्रमाः ।
चन्दनं मालतीमाला बालाहेलावलोकनम् ॥१७॥

एवं जल्पन् महाज्वरसन्तप्ताङ्गः स्वाङ्गनासक्तः पञ्चत्वमवाप । तत्क्षणात् स्वगृहाङ्गणवाप्यां वर्दु रोऽजनि ।

* १२ किसी प्रदेशमें राजगृह नामका नगर था। उसमें जिनदत्त सेठ नामका एक श्रावक रहता था। जिनदत्त जिनेन्द्र भगवान्के चरण-कमलरूपी परम मोक्ष-सुखके रसास्वादमें मत्त मधु-करके समान था। जिनदत्तकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता-का सौन्दर्य इन्द्राणीके सौन्दर्यसे भी अधिक मनोहर था। यह दोनों प्राणी बड़े आनन्दसे गृहस्थ-जीवन बिता रहे थे। एक दिन अचानक जिनदत्तका अन्तकाल आ उपस्थित हुआ और ज्यों ही उसके प्राण

निकलने लगे उसकी नजर अपनी रमणीके रमणीय लावण्यकी ओर सतृष्ण हो गयी और वह आन्तरिक व्यथाके साथ इस प्रकार विचार करने लगा :–

"युक्तिशून्य सैकड़ों प्रलापोंमें कोई सार नहीं है। पुरुषोंके उपभोगकी संसारमें दो ही वस्तुएँ हैं। एक तो प्राथमिक मद-क्रीड़ाओंसे अलस और स्तन-तट-परिपूर्ण सुन्दरियोंका यौवन और दूसरा वन।"

उसके चिन्तनकी धारा यहाँ आकर ही न रुकी। वह आगे सोचने लगा—

"यह जिनदत्ता समस्त स्त्री-सृष्टिमें मनोहर है। गुणवती है। संसारके सुखको देनेवाली है। मधुरभाषिणी है और विलासमें चतुर है। फिर भी मैं इसका भोग नहीं कर सका। मेरा भाग्य प्रतिकूल हो गया है। मुझे धिक्कार है कि मैंने यह पर्याय व्यर्थ ही खो दी! मैंने पूर्वजन्ममें जो दुस्तर पाप किये थे अब उन्हींका परिणाम अनुभव कर रहा हूँ।" अथ च–

"इस असार संसारमें शीतरश्मि चन्द्रमा, चन्दन, मालती-माला और रमणीका सविलास अवलोकन—यही तो सारभूत है!"

इस प्रकार अपनी स्त्रीके आर्तध्यानसे पीड़ित जिनदत्तको महान् ज्वर हो आया और अन्तमें वह मर गया। मरकर वह तुरन्त अपने घरके आँगनकी बावड़ीमें मेंढक हो गया।

*** १३ ततोऽनन्तरं तस्य भार्या कतिपयैर्दिनैस्तस्यामेव वाप्यां पानीयमानयनार्थं यावद् गता तावत्तां दृष्ट्वा पूर्वभवसंस्मरणात् तस्याः सम्मुखो धावन्नागतः। अथ सा तद्दर्शनभयभीता सती शीघ्रं गृहाभ्यन्तरं विवेश। एवं यदा यदा सा स्त्री प्रतिदिनं तद्वाप्यां गच्छति तदा तदा स सम्मुखो धावन्नागच्छति। एवं प्रकारेण भूरि दिनानि गतानि।**

ततः कतिपयैर्दिवसैस्तन्नगरबाह्यप्रदेशस्थोद्यानवने केचित् सुभद्राचार्यनामानो मुनयो मुनिशतपंचकसमेता विहारकर्म कुर्वन्तश्चाजग्मुः । अथ तेषामागमनमात्रेण तद्वनं सुशोभितं जातम् । तद्यथा—

शुष्काशोककदम्बचूत बकुलाः खर्जूरकादिद्रुमा
जाताः पुष्पफलप्रपल्लवयुताः शाखोपशाखान्विताः ।
शुष्काब्जाकरवापिकाप्रभृतयो जाताः पयःपूरिताः
क्रीडन्ति स्म मराजहंसशिखिनश्चक्रुः स्वरं कोकिलाः
॥१८॥

जातीचम्पकपारिजातकजपासत्केतकीमल्लिकाः
पद्मिन्यः प्रमुखाः क्षणाद्विकसिताः प्रापुर्मधूपास्ततः ।
कुर्वन्तो मधुरस्वरं सुललितं तद्गन्धमाघ्राय ते
गायन्तीव हि गायकाः स्फुरपरे (स्वरपरा) भातीदृशं
तद्वनम् ।१९।

एवं तद्वनं फलकुसुमविराजमानमवलोक्य वनपालको विस्मितमना मनसि चिन्तयामास केन कारणेनेदं वनं सहसा सुशोभितं संजातम् । तत्किमेषां मुनीनामागमनप्रभावात् ? किम्वा किंचिदरिष्टमस्य क्षेत्रस्य भविष्यत्येवं न विज्ञायते मया । तदहमेतानि फलानि राज्ञो दर्शनकरणार्थं नेष्यामि । एवं चिन्तयित्वा नानाविधफलानि गृहीत्वा तत्पुरनराधिराजदर्शनार्थमुत्सुकत्वेन ययौ । अथ नृपसकाशमागत्य प्रणामं कृत्वा तस्याकालोद्भवफलानां दर्शनमचीकरत् ।

अथ तान्यकालफलानि समालोक्य विस्मितचेता नरपतिरवोचत्—अरे वनपालक, किमेतानि फलान्यकाले ? तदा-

कथयं स चाह—भो देव, किमाश्चर्यं कथयामि । केचिन्मुनीश्वरा मुनिशतपंचकसमेता अस्मद्वनमागताः । तत्क्षणात् तेषामागमनमात्रेण तद्वनं सहसा फलकुसुमविराजमानं मनोहरं संजातमिति ।

* १३ कुछ दिनोंके बाद जिनदत्तकी पत्नी जिनदत्ता पानी भरने के लिए उस बावड़ीपर पहुंची । जिनदत्ताको देखकर उस मेंढक-को पूर्व भवका स्मरण हो आया और वह दौड़कर जिनदत्ताके सामने आ उछला । जिनदत्ता मेंढकको उछलकर सामने आते हुए देख डर गयी और अपने घरके भीतर घुस गयी । इस प्रकार जब-जब जिन-दत्ता पानी भरनेके लिए उस बावड़ीपर पहुंचती, वह मेंढक उछलकर उसके सामने आता । इस तरह बहुत दिन निकल गये ।

एक बार सुभद्राचार्य नामके मुनिराज पांच सौ मुनियोंके साथ विहार करते हुए राजगृहके बाहरी उद्यानमें आये । उनके आने मात्रसे वह उद्यान इस प्रकार हरा-भरा हो आया :-

"सूखे अशोक, कदम्ब, आम, बकुल और खजूर के वृक्षोंमें शाखाएं फूट आयीं । उनमें लाल-लाल पल्लव, सुगन्धित फूल और सुन्दर फल लग आये । सूखे तालाब, बावड़ी और कुँए पानीसे लहराने लगे । उनमें राजहंस और मोर क्रीड़ा करने तथा कोकिलाएँ पंचम स्वरमें काकली सुनाने लगीं ।

जो जाति, चम्पक, पारिजात, जपा, केतकी, मालती तथा कमल मुरझाये हुए थे वे सब तत्क्षण विकसित हो गये । इनकी सुगन्धि और रसके लोभी मधुकर इनपर मधुर गुञ्जन करने लगे और रस तथा गन्ध-पानमें निरत हो गये । गायक भी इधर-उधर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे ।"

वनपाल उद्यानको इस प्रकार फूला-फला तथा इसकी अकस्मात् उत्पन्न हुई स्वाभाविक सुषमा देखकर बड़ा विस्मित हुआ। वह सोचने लगा—कुछ समझमें नहीं आ रहा है, क्या मुनियोंके आगमनके प्रभावसे यह उद्यान इस तरह हरा-भरा हो गया है अथवा इस क्षेत्रका कोई कल्याण होने जा रहा है? वह सोचता है-इस समय मुझे इन फलोंको राजाके पास दिखलाने ले जाना चाहिए। इस तरह सोच-विचारके बाद वह उद्यानके विविध फलोंको लेकर उत्सुकताके साथ राजाकी सेवामें जा पहुंचा।

राजाके पास पहुँचकर उसने उन्हें प्रणाम किया और असमय-में फले हुए वे सब फल उनके सामने रख दिये। राजा इन फलोंको देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। वह वनपालसे कहने लगा-अरे वनपाल, यह फल बिना मौसमके कहांसे आ गये? वनपालने कहा—महाराज, मैं ठीक नहीं कह सकता, यह आश्चर्यपूर्ण घटना कैसे घटी? हाँ, पाँच सौ मुनियोंके संघ-सहित कोई मुनिराज अपने उद्यानमें अवश्य आये हैं। और मेरा ध्यान है कि उनके आनेके साथ ही उद्यान तत्काल फल और फूलोंसे मनोहर और अलंकृत हो गया।

❀ १४ एवं तद्वचनमात्रश्रवणात् सिंहासनादुत्थाय सप्तपदानि तद्दिशि[प्र-]चङ्क्रम्य परमभावेन प्रणामं कृत्वा स राजा सान्तःपुरः सपरिवारो वन्दनार्थं चचाल। अथ तद्वा-र्तामाकर्ण्य तत्पुरनिवासिनः सर्वे श्रावकजना जिनदत्तभार्या-विप्रमुखाः श्राविकाङ्गनाः परमभक्त्या वन्दनार्थं निर्ययुः। ततो मुनिसकाशं सम्प्राप्य त्रिःपरीत्य गुरुभक्तिपूर्वकं प्रणम्य सर्वे तत्रोपविविशुः। अथ तत्रैके वैराग्यपरा दीक्षां प्रार्थयन्ति स्म। एके धर्ममाकर्णयन्ति स्म। एके गद्यपद्यस्तुतिवचनैः स्तुतिं चक्रिरे। एके तान् मुनीनवलोक्य 'अद्य वयं धन्या' एवं

मनसि दध्रिरे । एके स्वातीतानागत भवपृच्छां कुर्वन्ति स्म । एवं यावत्तत्र लोकमहोत्सवो वर्त्तते तावत्तस्मिन्नवसरे सा जिनदत्ताङ्गना सम्मुखं स्थित्वा प्रणम्योवाचभगवन्, अस्मद्भर्त्तु जिनदत्तस्य कीदृशी गतिः संजाता, तत् कथनीयं भवद्भिः तच्छ्रुत्वा ते ज्ञानदृष्टया विलुलोकिरे । ततः प्रोचुः—हे पुत्रि, किं कथ्यते ? कथनं योग्यं न भवति । ततः साऽब्रवीत्—भो भगवन्, किमस्मिन् भवद्भिः शङ्का कर्त्तव्या ? यतोऽस्मिन् संसारे उत्तमो जीवोऽप्यधमः स्यादधमोऽप्युत्तमः स्यात् । अथ ते प्राहुः—हे पुत्रि, यत्रैवं तत्तव भर्त्ता स्वगृहाङ्गणवाप्यां दर्दुरो भूत्वाऽऽस्ते ।

* १४ जैसे ही राजाने वनपालके मुखसे मुनियोंके आगमनका समाचार सुना वह तत्काल सिंहासनसे उठ बैठा और उस दिशामें सात कदम आगे चलकर मुनिराजों को भावपूर्वक नमस्कार किया। इसके पश्चात् वह अन्तःपुर और अपने परिकरके साथ मुनि-वन्दनाके लिए चल पड़ा। जब पुर-वासियों को पता चला कि राजा मुनि-वन्दनाके लिये जा रहे हैं तो पुरवासी समस्त श्रावक और जिनदत्ता-प्रमुख श्राविकाएँ भी भक्तिसे गद्‌गद होकर मुनि-दर्शनके लिए चल दीं।

मुनियोंके निकट पहुँचते ही सबने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तीन प्रदक्षिणा की और नमस्कार करके यथास्थान बैठ गये। उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं में से कोई विराग-दीक्षाकी प्रार्थना करने लगे। कोई धर्म-चर्चा सुनने लगे। कोई गद्य-पद्यमय स्तवनों से स्तुति करने लगे। कोई मुनिदर्शन कर अपनेको धन्य-धन्य कहने लगे। कोई अपने अतीत भव पूछने लगे।

वहाँ इस प्रकार जन-समूह आनन्द लाभ ले ही रहा था कि ऐसे समय जिनदत्ताने मुनिराजको प्रणाम किया और कहने लगी—

महाराज, कृपाकर बताइये, हमारे स्वामी जिनदत्त किस पर्यायमें पहुँचे हैं ?

मुनिराज अवधि जोड़कर कहने लगे—हे पुत्रि, क्या बतावें ? कुछ कहते नहीं बनता।

जिनदत्ता कहने लगी–महाराज, इस सम्बन्धमें आप बिलकुल शङ्का न करें; क्योंकि संसारमें परिणामोंके वश उत्तम जीव भी अधम हो जाता है और अधम भी उत्तम हो जाता है।

मुनिराजने कहा—पुत्रि, यदि तुम्हारी ऐसी समझ है, तो यह जानो कि तुम्हारा पति तुम्हारे घरके आँगनकी बावड़ीमें मेंढक हुआ है।

* १५ तदाकर्ण्य सा विस्मितमनसा चिन्तयामास—अवश्यमिदं सत्यम्। यतस्तद्वाप्यां प्रतिदिनं मम सम्मुखो धावन्नागच्छति यो दर्दुरः स एव मम भर्त्ता भवति। यतो नान्यथा मुनिभाषितमिति। एवं चिन्तयित्वा भूयोऽपि मुनिं पप्रच्छ। तद्यथा—

वशीकृतेन्द्रियग्रामः कृतज्ञो विनयान्वितः।
निष्कषायः प्रसन्नात्मा सम्यग्दृष्टिर्महाशुचिः ॥२०॥
श्रद्धालुर्भावसम्पन्नो नित्यषट्कर्मतत्परः।
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमुद्यतः ॥२१॥
नवनीतसुरामांसैर्मधूदुम्बरपञ्चकैः।
अनन्तकायकाज्ञातफलाविनिशिभोजनैः ॥२२॥
आमगोरससम्पृक्तैर्विदलैः पुष्पितो(तौ)दनैः।
दध्यहर्द्वितयातीतप्रमुखैरुज्झितोऽशनैः ॥२३॥ (युग्मम्)
पञ्चाणुव्रतसंयुक्तः पापभीरुर्दयान्वितः।
एवंविधश्च मे भर्त्ता भेकोऽभूत् स कथं प्रभो ॥२४॥
(कुलकम्)

तच्छ्रुत्वा मुनयः प्रोचुः—हे पुत्रि, युक्तमिदमुक्तं भवत्या। परन्तु यद्यपि जीवस्य परमश्रावकगुणाः सन्ति, तथाप्यन्तकाले यादृशी बुद्धिरुत्पद्यते तादृशी गतिर्भवति।

* १५ मुनिराजकी बात सुनकर उसे बड़ा विस्मय हुआ। वह सोचने लगी, मुनिराजका कथन अवश्य ही सत्य है। क्योंकि उस बावड़ीमें प्रतिदिन जो मेंढक उछलकर मेरे सामने आता है, वही मेरे पति होने चाहिए। मुनिराज कदापि मिथ्या नहीं कह सकते। इस प्रकार सोचकर वह पुनः मुनिराजसे बोली—'महाराज, मेरे पतिदेव जितेन्द्रिय थे, कृतज्ञ थे, विनीत थे, मन्दकषायी थे, प्रसन्नात्मा थे, सम्यग्दृष्टि थे और महान् पवित्र थे। वे श्रद्धालु थे, भावुक थे, निरन्तर षट्कर्मपरायण थे। व्रत, शील, तप, दान और जिनपूजामें उद्यत रहते थे। मक्खन, मद्य, मांस, मधु, पाँच उदम्बरफल, अनन्तकाय, अज्ञात फल, निशि भोजन, कच्चे गोरसमें मिश्रित द्विदलभोजन, पुष्पित चावल और दो आदि दिनके सिद्ध हुए भोजनके त्यागी थे। पाँच अणुव्रतोंका पालन करते थे। पापसे डरते थे और दयालु थे। इस प्रकार व्रती-तपस्वी भी मेरे पति मर कर मेंढक हुए! महाराज, आप बतलाइए, इसका क्या कारण है?"

मुनिराज कहने लगे—पुत्रि, तुम ठीक कहती हो। पर बात यह है कि भले ही किसी व्यक्तिमें समस्त श्रावकोचित गुणों का सद्भाव हो, परन्तु मृत्युके समय उसके जिस प्रकारके परिणाम रहते हैं उसी कोटिका गतिबन्ध हुआ करता है।

* १६ अथ सा प्रोवाच—भो भगवन्, तन्मे नाथस्यान्तकाले कीदृशो भावः समुत्पन्नः? अथ ते ब्रुवन्ति स्म—हे पुत्रि, स जिनदत्तो महाज्वरसंपीडितोऽन्तकाले तवैव वार्त्तेन (तया) मृत्वा निजगृहाङ्गणवाप्यां दर्दुरोऽभूत्। ततः साऽब्रवीत्—हे

स्वामिन्, यद्येवमन्तकाले भावः प्रमाणं तर्हि कथमस्माकं सागारधर्माचरणं व्यर्थम् ? तदाकर्ण्य ते मुनयो विहस्य प्रोचुः–हे पुत्रि, न भवत्येवम्। न भावो व्यर्थो न वाऽऽचरणम्। तच्छृणु। यस्य हि जीवस्य शुभधर्माचरणवर्तमानस्याप्यन्तकाले यदि कथमप्यशुभो भावः समुत्पद्यते, ततस्तद्भाववशात् तादृशीं गतिं प्राप्नोति। ततः स्वल्पतरं भुक्त्वा पश्चाच्छुभगतिं लभते। यतः स्थितिच्छेदोऽस्ति परं गतिच्छेदो नास्ति। अत एव नोभयं व्यर्थम्। तत्तव भर्ताऽसौ जिनदत्तः कतिपयैर्दिवसैर्दर्दुरत्वे निवृत्ते देवगतिं प्राप्स्यति। एवं मुनिवचनं श्रुत्वा मुनिं प्रणम्य सा जिनदत्ता स्वगृहमाययौ। अतो वयं ब्रूमः–

> मरणे या मतिर्यस्य सा गतिर्भवति ध्रुवम्।
> यथाऽभूज्जिनदत्ताख्यः स्वाङ्गनार्त्तेन दर्दुरः॥

एवमुक्त्वा तस्य कृमिरूपस्य पंचनमस्कारान् ददौ। ततः शीघ्रं षोडशे स्वर्गे देवोऽजनि। अतोऽहं ब्रवीमि–

> व्यर्थमार्तं न कर्त्तव्यमार्त्तात्तिर्यग्गतिर्भवेत्।
> यथाऽभूद्धर्मसेनाख्यः पक्वे चिर्भटिके कृमिः॥

* १६ मुनिराजकी बात सुनकर जिनदत्ता फिर प्रश्न करने लगी। उसने पूछा- महाराज, अन्त समय मेरे पतिके मनमें क्या भाव उदित हुआ था ? मुनिराज कहने लगे—पुत्रि, जिनदत्त अपने अंतिम समयमें महान् ज्वरसे पीड़ित हुआ और तुम्हारा इष्ट वियोगजन्य आर्तध्यान करते-करते ही उसका प्राण-पखेरू उड़ गया। इस कारण ही वह तुम्हारे आँगनकी बावड़ीमें मेंढक पर्यायमें उत्पन्न हुआ है।

मुनिराजका उत्तर सुनकर जिनदत्ताने फिर पूछा—महाराज, जब अन्त समयके भावोंके अनुसार ही गतिबन्ध होता है तो श्रावकों-

को गृहस्थधर्मका पालन करना व्यर्थ ही है—वे जीवनभर गृहस्थधर्मकी साधनामें न झुलस कर क्यों न अन्त समय ही अपने परिणामोंको विशुद्ध रखकर सद्गतिको प्राप्त करें ? जिनदत्ताकी बात सुनकर मुनिराज मन्दस्मितपूर्वक कहने लगे—पुत्रि, यह बात नहीं है। न भाव व्यर्थ हैं और न ही जीवनकी आचरण-साधना। सुनो। जो जीव जीवनभर शुभ धर्माचरण करता रहता है और अन्त समय कदाचित् उसके मनमें अशुभ भाव आता है तो उस अशुभ-भावके कारण उसे अशुभ गतिमें ही जन्म लेना पड़ता है। वहाँ थोड़े समय तक कर्मफल भोगनेके पश्चात् उसे शुभगति मिल जाती है। क्योंकि बँधी हुई गतिकी स्थितिमें तो अन्तर हो जाता है, लेकिन मूलगतिमें अन्तर नहीं आता। इसलिए न अन्त समयके भाव ही व्यर्थ हैं और न जीवनकी सदाचार-साधना ही। तुम्हारा पति भी कुछ ही दिनमें मेंढक पर्याय छोड़कर देव हो जायगा।

इस प्रकार मुनिराजका कथन सुनकर जिनदत्ताने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और वह अपने घर चली आयी।

मुनिराज चन्द्रसेन कहने लगे, मैंने इसीलिए कहा है :—

"मरणे या मतिर्यस्य सा गतिर्भवति ध्रुवम्।
यथाऽभूज्जिनदत्ताख्यः स्वाङ्गनार्तेन दर्दुरः॥"

"मरणके समय जिसके जैसे परिणाम होते हैं उसके अनुसार ही गति-बन्ध हुआ करता है। जिस प्रकार जिनदत्त अपनी स्त्रीके आर्तध्यानके कारण मेंढक हुआ।"

इस प्रकार कथा सुनाकर मुनिराजने उस ककड़ीके कीट को पञ्चनमस्कार मन्त्र सुनाया और वह मरकर सोलहवें स्वर्गमें देवरूपसे उत्पन्न हो गया।

रति मकरध्वजसे कहने लगी—देव, मैं इसीलिए कहती हूँ :—

"व्यर्थमार्त्तं न कर्त्तव्यमार्त्तात्तिर्यग्गतिर्भवेत् ।
यथाऽमूढ्‌हेमसेनाख्यः पक्वे चिर्भटके कृमिः ।।"

"निष्प्रयोजन आर्त्तध्यान नहीं करना चाहिए। क्योंकि आर्त्त-ध्यानके कारण पशु-पर्यायमें जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार आर्तध्यान करनेसे हेमसेन मुनि पके हुए खरबूजाके कीड़ा बने।"

*** १७ एवं श्रुत्वा महाकोपं गत्वा कामः प्रोवाच—हे दुश्चारिणि, किमनेन प्रपंचोक्तेन ? यत्त्वया रचितमस्ति तत्सर्वं मया ज्ञातम् । शोकेनानेन मां हत्वा त्वयाऽन्यो भर्त्ता हृदि चिन्तितोऽस्ति । यतः स्त्रीणामेकतो रतिर्नास्ति । उक्तं च यतः—**

"जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ।।२२।।
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ।।२३।।
वञ्चकत्वं नृशंसत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता ।
इति नैसर्गिका दोषा यासां ताः सुखदाः कथम् ।।२४।।"

तथा च—

"वाचि चान्यन्मनस्यन्यत् क्रियायामन्यदेव हि ।
यासां साधारणं स्त्रीणां ताः कथं सुखहेतवः ।।२५।।"

अन्यच्च—

"विचरन्ति कुशीलेषु लङ्घयन्ति कुलक्रमम् ।
न स्मरन्ति गुरुं मित्रं पतिं पुत्रञ्च योषितः ।।२६।।
देवदैत्योरगव्यालग्रहचन्द्रार्कचेष्टितम् ।
जानन्ति ये महाप्राज्ञास्तेऽपि वृत्तं न योषिताम् ।।२७।।

तथा च–

"सुखदुःखजयपराजयजीवितमरणानि ये विजानन्ति ।
मुह्यन्ति तेऽपि नूनं तत्त्वविदश्चेष्टिते स्त्रीणाम् ॥२८॥
जलधेर्यान्ति पात्राणि ग्रहाद्या गगनस्य च ।
यान्ति पारं न तु स्त्रीणां दुश्चरित्रस्य केचन ॥२९॥"

तथा च–

"न तत् क्रुद्धा हरिव्याघ्रव्यालानलनरेश्वराः ।
कुर्वन्ति यत् करोत्येका नरि नारी निरङ्कुशा ॥३०॥"

अन्यच्च–

"एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो–
र्विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलपराक्रमेण
नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥३१॥"

* १७ रतिके मुखसे यह विवरण सुनकर कामको बड़ा क्रोध आया और वह कहने लगा—अरी दुश्चरित्रे, अधिक क्यों बक रही है ? जो प्रपंच तूने तैयार किया है उसे मैं खूब समझता हूँ। इस शोकमें मुझे मारकर तू दूसरा पति करना चाहती है ! स्त्रियाँ भला कब एकसे प्रेम कर सकती हैं ? कहा भी है :—

"स्त्रियाँ एकके साथ बात करती हैं, दूसरेको विलासपूर्वक देखती हैं और मनमें किसी तीसरेका ही ध्यान करती रहती हैं। ये एक व्यक्ति से स्नेह नहीं कर सकतीं।"

"जिस प्रकार अग्नि काठके ढेरसे तृप्त नहीं होती, समुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता, काल प्राणियोंसे तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियां भी पुरुषों से तृप्त नहीं हो सकतीं।

वञ्चकता, नृशंसता, चंचलता और कुशीलता—ये दोष स्त्रियोंमें निसर्गसे पाये जाते हैं। फिर स्त्रियाँ सुखद कैसे हो सकती हैं?" और—

"जिनकी वाणीमें कुछ अन्य होता है, मनमें कुछ अन्य रहता है तथा कर्ममें कुछ अन्य हो रहता है वे स्त्रियाँ सुखदायी कैसे हो सकती हैं?" और भी कहा है—

"स्त्रियाँ कुशीलोंके साथ विचरण करती हैं। कुलक्रम का उलंघन करती हैं और गुरु, मित्र, पति तथा पुत्र किसीका भी ध्यान नहीं रखतीं।

जो महापंडित देव, दैत्य, सांप, व्याल, ग्रह, चन्द्र और सूर्यकी गतिविधिके परिज्ञाता हैं वे भी स्त्रियोंका आचार नहीं जान पाते।" अथ च—

"जो तत्त्वज्ञानी सुख-दुख, जय-पराजय और जीवन-मरणके तत्त्वको समझते हैं वे भी स्त्रियोंके व्यवहारसे ठगाये जाते हैं।

जलयान समुद्रके एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुँच जाते हैं और ग्रह आदि आकाशके। परन्तु स्त्रियोंके दुश्चरित्रका पार कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता।" और—

"क्रुद्ध हुए सिंह, व्याघ्र, व्याल, अग्नि और राजा भी उतना अनिष्ट नहीं करते जितना एक क्रुद्ध निरङ्कुश नारी मनुष्यका कर सकती है।" एवञ्च—

"स्त्रियाँ धनके हेतु हँसती हैं और रोती हैं। मनुष्यको विश्वासी बना देती हैं, लेकिन स्वयं विश्वस्त नहीं होतीं। इसलिए कुलीन, सुशील और पराक्रमी मनुष्यको चाहिए कि वह श्मशानके घड़ोंके समान इनका परित्याग कर दे।"

❀ १८ एवं तस्य कामस्य दारुणं वचनमाकर्ण्य रतिरब्रवीत्–भो नाथ, सत्यमिदमुक्तं भवता । परं किन्तु युक्तायुक्तज्ञो न भवति । उक्तञ्च यतः–

"कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलाद्दूर्वा च गोलोमतः
पङ्कात्तामरसं शशाङ्क उदधेरिन्दीवरं गोमयात् ।
काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणिर्गोपित्ततो(तो)रोचना
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं
जन्मना ॥३२॥"

तत्त्वां वञ्चयित्वा कोऽन्यो भर्ताऽस्माकमस्ति ? तत्त्वया एतद्वक्तव्यं ममोपरि वृथोक्तम् ।

तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतिः प्रोवाच–हे सखि, यद्य वक्तव्यं तदनेनोक्तम् । तदिदानीं किं वृथाऽनेन प्रोक्तेन ? यतस्त्वयं वात्मनः सन्देहः कृतः ।

"मूर्खैरपक्वबोधैश्च सहालापश्(पे)चतुष्फलम् ।
वाचां व्ययो मनस्तापस्ताडनं दुःप्रवादनम् ॥२५॥

अन्यच्च–

"दुराग्रहग्रहग्रस्ते विद्वान् पुंसि करोति किम् ।
कृष्णपाषाणखण्डेषु मार्दवाय न तोयदः ॥२६॥

तत्स्वदोषनाशाय गच्छ । उक्तञ्च यतः–

"अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्त्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे ।
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि–
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति॥३३॥"

तथा च—

मार्त्तण्डान्वयजन्मना क्षितिभृता चाण्डालसेवा कृता
रामेणाद्भुतविक्रमेण गहनाः संसेविताः कन्दराः ।
भीमाद्यैः शशिवंशजैर्नृपवरैर्वैन्यं कृतं रङ्कवत्
स्वाऽऽभाषाप्रतिपालनाय पुरुषैः किं किं न चाङ्गी-
कृतम् ॥२७॥

एवं सखीवचनमाकर्ण्य रतिरमणी कामं प्रणम्य निर्ग्रन्थ-
मार्गेण निर्गता । तद्यथा—

यथेन्दुरेखा गगनाद्विनिर्गता
यथा हि गङ्गा हिमभीविनीधरात् ।
क्रुद्धाद्यथेभात् करिणी विनिर्गता
रतिस्तथा सा मदनाद्विनिर्गता ॥२८॥

* १८ मकरध्वजके इस प्रकार दारुण वाक्य सुनकर रतिने कहा—नाथ, आप ठीक कहते हैं; पर आपको उचित-अनुचितका विवेक नहीं है । कहा भी है :—

"रेशम कीड़ोंसे बनता है, सुवर्ण पत्थरसे निकलता है, दूब गोरोमसे पैदा होती है, कमल कीचड़से उत्पन्न होता है । चन्द्रमा समुद्रसे जन्म लेता है, नीला कमल गोबरसे प्रकट होता है, अग्नि काठसे निकलती है, मणि साँपके फणसे उत्पन्न होता है, और गोरोचन गोपित्तसे प्रकट होता है । इस प्रकार मूल्यवान् पदार्थ अपनी-अपनी प्रकट विशेषताओंके कारण मूल्यवान् समझे जाते हैं । जन्मसे कोई मूल्यवान् नहीं बनता ।"

रति काम से कहती है—नाथ, ठीक इसी प्रकार अखिल स्त्री-सृष्टि दूषित नहीं कही जा सकती और इसीलिए मुझे भी आपको इस कोटिमें नहीं रखना चाहिए । आप ही बतलाइए, आपको छोड़-

कर और किसे मैं अपना पति बनाना चाहती हूँ ? इसलिए आपने जो मेरे ऊपर यह लाञ्छन लगाया है, उसका कोई अर्थ नहीं है।

मकरध्वजकी बात सुनकर प्रीति कहने लगी—सखि, वास्तवमें इन्होंने बहुत ही अनुचित बात कही है। लेकिन अब इस व्यर्थके विवादसे क्या मतलब ? फिर सखि, तुम्हीने तो अपने ऊपर सन्देह किया। देखो—

"कच्ची समझके मूर्खोंके साथ बात करनेके चार ही परिणाम हैं—वाणीका व्यय, मनस्ताप, ताड़न और बकवाद।"

"जो पुरुष दुराग्रही है उसके मनको कोई भी विद्वान् बदल नहीं सकता। जिस प्रकार मेघ काले पत्थरोंको जरा भी मृदु नहीं कर सकते।"

प्रीति कहने लगी—सखि, चलो, अब पतिदेवकी आज्ञाका पालन करके अपने पापका प्रायश्चित्त कर डालें। कहा भी है :—

"महादेवजी अब भी कालकूटका परित्याग नहीं कर रहे हैं। कच्छप आज भी अपनी पीठपर पृथ्वीका भार उठाये हुए है। और समुद्र अद्यावधि दुःसह वड़वानल समेटे हुए है। ठीक है, कर्तव्यनिष्ठ मनुष्य अङ्गीकृत कार्यको सदैव पूर्ण करते हैं।" तथा—

'सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालकी सेवा करनी पड़ी। अद्भुत पराक्रमी रामको पर्वतोंकी कन्दराएँ छाननी पड़ीं। और भीम आदिक चन्द्रवंशी नरेशोंको रङ्कके समान दीनता दिखलानी पड़ी। ठीक है, अपनी बातके निर्वाहके लिए महान् पुरुषोंने भी क्या-क्या अनीप्सित कार्य नहीं किया ?"

इस प्रकार अपनी सखीकी बात सुनकर रतिने कामको प्रणाम किया और वह जिनराजके पास जानेके लिए आर्यिकाका वेष बनाकर निकल पड़ी।

"रति कामके निकटसे इस प्रकार निकली जिस प्रकार चन्द्र-रेखा आकाशसे निकलती है, गङ्गा हिमाचल से निकलती है, और हथिनी क्रुद्ध हाथीके पाससे चली जाती है।"

* १६ एवं सा रतिरमणी यावत्तेन निर्ग्रन्थमार्गेण गच्छति, तावत् कामराजस्य सचिवो मोहः सम्मुखः प्राप्तः। अथ तेन मोहेन तां रतिरमणीमतिक्षीणां चिन्तापरिपूर्णां दृष्ट्वा विस्मितमनाः स मोहः प्रोवाच–हे देवि, अस्मिन् विषमे मार्गे कुतो भवतीभिरागमनं कृतम् ? एवं तेन पृष्टा सती सा रतिरमणी सकलवृत्तान्तमकथयत् तच्छ्रुत्वा मोहोऽब्रवीत्–हे देवि, यदा सञ्ज्वलनेन विज्ञप्तिका प्रेषिता तदेतत्सर्वं मया ज्ञातम्। तदहं तेनैव संयमेलनार्थं प्रेषितः। तद् यावदागमिष्यामि तावत् स न सहते। तदेतदयुक्तं कृतं तेन। ततो रतिराह–भो मोह, विषयव्याप्ता ये भवन्ति ते युक्तायुक्तं किञ्चिन्न जानन्ति।

उक्तञ्च यतः–

"किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्य-
स्त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत् सिषेवे।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥३४॥"

अन्यच्च, सा सिद्ध्यङ्गना जिननाथं वंचयित्वाऽन्येषां नामपृच्छामपि न करोत्येवं त्वं जानासि। तत्किं परदाराभिलाषं (षः) कर्त्तुं युज्यते ? उक्तं च यतः–

"प्राणनाशकरा प्रोक्ता परमं वैरकारणम्।
लोकद्वयविरुद्धा च पररामा, ततस्त्यजेत् ॥३५॥"

तथा च–

"भवस्य बीजं नरकस्य द्वारमार्गस्य दीपिका ।
शुचां कन्दः कलेर्मूलं पररामा, ततस्त्यजेत् ॥२६॥"

अन्यच्च–

"सर्वस्वहरणं बन्धं शरीरावयवच्छिदाम् ।
मृतश्च नरकं घोरं लभते पारदारिकः ॥३०॥
नपुंसकत्वं तिर्यक्त्वं दौर्भाग्यञ्च भवे भवे ।
भवेन्नराणां मूढानां पररामाभिलाषतः ॥३१॥
दत्तस्तेन जगत्यकीर्त्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चक–
श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।
संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः
कामार्त्तस्त्यजति प्रतोदकभिदां(ऽ)स्वस्त्रीं परस्त्रीं न यः
॥३२॥"

❀ १६ जैसे ही रति निर्ग्रन्थ-मार्गसे आ रही थी, मकरध्वजके प्रधानसचिव मोह उसके सामने आ गये। मोहने देखा कि रति बहुत ही क्षीण हो गयी है और चिन्तित भी है रतिकी इस प्रकारकी अवस्था देखकर उसे बड़ा विस्मय हुआ और वह रतिसे कहने लगा—देवि, आपने यह विषम मार्ग किसलिए अङ्गीकार किया है ?

मोहकी बात सुनकर रतिने उसके सामने समस्त घटना-चक्र ज्योंका त्यों रख दिया।

रतिकी बात सुनकर मोहने कहा—देवि, जिस समय संज्वलनने अपनी विज्ञप्ति सुनायी थी मैं उसी समय भांप गया था कि आगे इस प्रकारका घटनाचक्र चलेगा। मैं भी महाराज मकरध्वज की आज्ञानुसार सैन्य तैयार करनेके लिए गया था और लौटकर ही न आ पाया कि महाराजने आपके लिए इस प्रकारकी अनुचित आज्ञा दे डाली !

मोहकी बात सुनकर रतिने कहा—मोह, जो विषयी होते हैं उन्हें उचित-अनुचितका विवेक नहीं होता। कहा भी है :—

"क्या स्वर्गमें कुवलयके समान कमनीय नेत्रवाली देवाङ्गनाएँ नहीं थीं जो इन्द्रने तपस्विनी अहिल्याका सतीत्व-भंग किया ? ठीक है, जब हृदयकी तृण-कुटीरमें कामाग्नि दहकने लगती है तो अच्छा विवेकनिष्ठ भी विवेक-बुद्धि खो बैठता है ।"

रति मोहसे कहती गयी—आप भी इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हैं कि मुक्ति-रमा जिननाथको छोड़कर अन्य किसीका नाम तक नहीं सुनना चाहती । फिर समझमें नहीं आता कि प्राणनाथ दूसरेकी स्त्रीके लिए क्यों इतने लालायित हैं ? सुनिए, परस्त्री-सेवन कितना भयंकर है :—

"नीतिविदोंका कथन है कि परस्त्री प्राणोंका नाश करनेवाली है, घोर विरोधका कारण है और दोनों लोकमें अनुपसेव्य है । इसलिए मनुष्य परदाराकी चाह कभी न करे ।" अथ च—

"परकीया नारी संसार-भ्रमणका कारण है, नरकद्वारके मार्गके लिए दीपिकाके समान है और शोक एवं कलहका मूल कारण है । इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह परदाराकी चाह कभी न करे ।

जो परदारासे अनुचित सम्बन्ध रखतेहैं, उनका सर्वस्वतक छिन जाता है । वे बाँधे जाते हैं, उनके शरीरके अङ्ग छेदे जाते हैं और मरकर वे घोर नरकमें जाते हैं ।

जो मूढ़ मनुष्य परकीय स्त्रीकी केवल चाह तक करते हैं वे जन्म-जन्मान्तरमें नपुंसक होते हैं, तिर्यञ्च होते हैं और दरिद्र होते हैं ।"

*** २० एवं तस्या वचनमाकर्ण्य मोहमल्लस्तां प्रति[स] प्रपंचमबोचत्—हे देवि, युक्तमिदमुक्तं भवतीभिः । परं किन्तु यस्य यथा भवितव्यमस्ति तदन्यथा न भवति । उक्तं च यतः—**

"भवितव्यं यथा येन न तद्भवति चान्यथा ।
नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति ॥३६॥

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति ॥३७॥"

ततो रतिरुवाच–भो मोह, तदधुना किं कर्त्तव्यम् । तत्कथय । अहं चेत् त्वया सह भूयोऽप्यागमिष्यामि तन्मां दृष्ट्वा स कामोऽतिकोपं यास्यति । तत्त्वं गच्छ । अहं माऽऽगमिष्यामि । मोहः प्राह–हे देवि, युक्तमेतन्न भवति । भवतीभिरवश्यमागन्तव्यम् । रतिराह–भो मोह, त्वं तत्र मां नीत्वा किं तावत् प्रथमं भणिष्यसि ? स मोहः प्राह–

उत्तरादुत्तरं वाक्यं वदतां सम्प्रजायते ।
सुवृष्टिगुणसम्पन्नाद् बीजाद्बीजमिवापरम् ॥६६॥

एवमुक्त्वा रतिरमण्या सह कामपार्श्वे समागतो मोहः ।

इति ठक्कुरमाइन्ददेवसुतजिन(नाग)देवविरचिते स्मरपराजये संस्कृतबन्ध

श्रुतावस्थानामप्रथमपरिच्छेदः । १॥

* २० रतिकी इस प्रकार विस्तृत बात सुनकर मोहमल्लने कहा—देवि, आप बिलकुल ठीक कह रही हैं, लेकिन भवितव्यता अन्यथा नहीं हो सकती । कहा भी है :—

"जिसकी जैसी भवितव्यता होती है वह होकर रहती है । और वह भी उसी रूपमें होती है, अन्यथा नहीं । मनुष्य या तो भवितव्यताके रास्तेपर खींच लिया जाता है या वह स्वयं ही उस रास्तेसे प्रयाण करता है ।

जो भवितव्य नहीं है वह कभी नहीं होता और जो भवितव्य होता है वह अनायास भी होकर रहता है । यदि भवितव्यता नहीं है तो हथेलीपर रक्खी हुई वस्तु भी विनस जाती है ।"

इसके पश्चात् रतिने कहा—मोह, तुम यह बताओ कि मैं इस समय क्या करूँ ? यदि मैं लौटकर तुम्हारे साथ चलूँ तो प्राणनाथ मुझे देखकर बहुत नाराज होंगे। इसलिए तुम चलो। मेरा लौटना अब ठीक नहीं है।

मोहने कहा—देवि, यह न होगा। आप अवश्य ही मेरे साथ लौट चलिए। रतिने कहा—मोह, आप मुझे प्राणनाथके पास ले जाकर क्या कहेंगे ?

मोहने कहा—देवि, इस सम्बन्धमें आप क्यों चिन्ता करती हैं ?

"जिस प्रकार अच्छी वर्षाके समय बोये गये बीजसे और बीज पैदा होता है, उसी प्रकार प्रश्नकर्ताके उत्तरसे वार्तालापकी परम्परा चल पड़ती है।"

इस प्रकार मोह रतिको साथमें लेकर कामके निकट जा पहुँचा।

इस तरह ठक्कुर माइन्ददेव द्वारा प्रशंसित जिन(नाग)-देव-विरचित संस्कृतबद्ध स्मरपराजयमें श्रुतावस्था नामक प्रथम परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।

द्वितीयः परिच्छेदः

* १ ततोऽनन्तरं रतिरमणीसहितं मोहमालोक्य लज्जया स तूष्णीं तस्थौ। तदा मोहः प्रोवाच—भो देव, किमेवमुत्सुकस्त्वं कृतम्। यावदहमागमिष्यामि तावत्त्वं न सहसे? अन्यच्च, किं केन क्वापि स्वभार्या दूतत्वं प्रेषितास्ति? अथवा तस्मिन् विषमे निर्ग्रन्थमार्गे जिननाथस्यावपालकाः ये सन्ति तैर्यदि व्यापाद्यते तदाऽऽत्मनः स्त्रीहत्या भवेदिति। अन्यच्च, नारीहत्याजं पातकं स्यात्: ननु त्वया मया बिना दुर्मन्त्रोऽयं कृतः।

अन्यच्च—

गोहत्या युगमेकं स्यात्, स्त्रीहत्या च चतुर्युगे।
यतिहत्या तु कल्पान्ते, भ्रूणहत्या न शुद्ध्यति ॥१॥

उक्तं च यतः—

"दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनाद्
विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् स्नेहः प्रवासाश्रयात्
स्त्री मद्यादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात् प्रामादाद्धनम् ॥१॥"

अत एव सचिवेन विना स्वामिना मन्त्रो न कर्त्तव्यः।

एवं तस्य मोहस्य वचनमाकर्ण्य कामोऽब्रवीत्—भो मोह, किमनेन भूरिप्रोक्तेन? यत्कार्यार्थं प्रेषितस्त्वं तत्कथय कीदृशं

कृतम् ? तत्कथय । मोहः प्राह–देव, यत्कार्यार्थं त्वया प्रेषितोऽहं तन्मया सकलसैन्यमेलनमेवंविधं कृतं यथा सा सिद्ध्यङ्गना तवैव दासी भवति । अन्यच्च, स जिनराजस्तव सेवां यथा करोति तथोपायो मया रचितः । एतद्वचनमाकर्ण्य स्मरोऽब्रवीत्–मोह, सत्यमिदमुक्तं भवता । तदेवं कर्तुं त्वया शक्यते । मोह प्राह-देव, अहमिति स्तुतियोग्यो न भवामि । यन्मया स्वामिकार्यं क्रियते स स्वामिनः प्रभावः । यत उक्तं च–

"शाखामृगस्य शाखायाः शाखाग्रं नु पराक्रमः ।
यत् पुनस्तीर्यतेऽम्भोधिः प्रभावः प्राभवो हि सः ।।२।।"

अन्यच्च–

"यद्रेणुर्विकलीकरोति तरणिं तन्मारुतस्फूर्जितं
भेकश्चुम्बति यद्भुजङ्गवदनं तन्मन्त्रिणः स्फूर्जितम् ।
चैत्रे कूजति कोकिलः कलतरं तत् सा रसालद्रुम-
स्फूर्तिर्जल्पति मादृशः किमपि तन्माहात्म्यमेतद् गुरोः ।।३।।"

अथवा धीमतां किमसाध्यमस्ति ? उक्तं च यतः–

"सर्पान् व्याघ्रान् गजान् सिंहान् दृष्ट्वोपायैर्वशीकृतान् ।
जिनेति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम् ।।४।।"

तथा च–

"वरं बुद्धिर्न सा विद्या, विद्याया धीर्गरीयसी ।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ।।५।।"

एतद्वचनं श्रुत्वा कामः प्राह–भो मोह, कथमेतत् ? स मोहोऽब्रवीत्–

[द्वितीय परिच्छेद]

* १ मकरध्वजने जैसे ही रतिके साथ वापिस आये हुए मोहको देखा वह लज्जासे लाल-लाल हो गया और उसके मुखसे एक शब्द भी न निकला। इतनेमें मोहने मकरध्वजसे कहा-महाराज, आपने यह कैसा अनुचित कार्य किया है? आप इतने अधीर हो गये कि मुझे लौटकर वापिस भी न आने दिया? फिर स्वामिन् क्या किसीने कभी अपनी पत्नीको दूत बनाया है? और क्या आपको इतना भी नहीं मालूम है कि निर्ग्रन्थ-मार्ग कितना विषम है? कदाचित् इस मार्गसे जाती हुई रतिको मुक्ति-स्थानके संरक्षक हत्या कर देते तो इस महत् आत्म-हत्याके पापका कौन भागी होता? संसार भरमें जो तुम्हारा अपयश फैलता वह अलग। इसलिए मेरी अनुपस्थितिमें तुमने ठीक मन्त्र नहीं किया। कहा भी है:—

"अनुचित परामर्शसे राजा नष्ट हो जाता है। परिग्रह से यति नष्ट हो जाता है। लाड़ करनेसे पुत्र नष्ट हो जाता है। अध्ययन न करनेसे ब्राह्मण नष्ट हो जाता है। कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है। दुर्जन-संसर्गसे शील नष्ट हो जाता है। स्नेहके न होनेसे मैत्री नष्ट हो जाती है। अनीतिसे समृद्धि नष्ट हो जाती है। परदेशमें रहनेसे स्नेह टूट जाता है। मद्य-पानसे स्त्री दूषित हो जाती है। देख-भाल न रखनेसे खेती नष्ट हो जाती है। त्यागसे और प्रमादसे धन विनस जाता है।"

मोहने कहा—इसलिए राजा का कर्त्तव्य है कि वह बिना मन्त्रीके कदापि मन्त्र न करे।

मोहकी बात सुनकर मकरध्वज कहने लगा—अरे मोह, बार-बार एक ही बात क्यों दुहरा रहे हो? तुम जिस कामके लिए भेजे गये थे उसे तुमने कैसा किया? पहले यह बताओ।

मोह उत्तरमें कहने लगा—स्वामिन् आपने मुझे जिस कार्य—सैन्यसंमेलन-के लिए भेजा था, वह कार्य मैं कर चुका। साथ ही

इस प्रकारका भी प्रयत्न किया है कि जिससे मुक्ति-स्त्री आपकी ही पत्नी बने। इसके अतिरिक्त मैंने इस तरहकी युक्तिका प्रयोग किया है कि उल्टे जिनराज आपकी ही सेवा करेगा। मोहकी बात सुनकर मकरध्वज बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—मोह, तुमने ठीक कहा है। यह काम तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है?

मोह बोला—देव, मैं इस प्रकार प्रशंसाका पात्र नहीं हूँ। आपका जो कार्य मुझसे बन पड़ता है, वह सब आपके प्रभावसे। कहा भी है—

"वानर वृक्षकी शाखा-प्रशाखाओंतक ही उछलकर अपना पराक्रम दिखला सकता है। यदि वह समुद्र पार करता है, तो इसमें प्रभुका ही प्रभाव समझना चाहिए, वानरका नहीं।"

मोह कहता है—स्वामिन् ठीक यही बात मेरे सम्बन्धकी है। तथा—

"धूलि यदि सूर्यको ढक देती है तो इसमें धूलि की विशेषता नहीं यह तो वायुका विक्रम है। इसी प्रकार यदि मेंढक साँपका मुँह चूमता है, यह भी मन्त्रविद्की कुशलता है। और चैतमें कोकिल जो कलगान करती है, वह भी आम्रवृक्षोंके मञ्जरित होनेका परिणाम है। वैसे ही मुझ-जैसा मूढ़ जो बात कर रहा है इसमें भी गुरुका माहात्म्य ही काम कर रहा है।"

अथवा बुद्धिमान् पुरुष क्या नहीं कर सकते? कहा भी है:—

"जब मनुष्य सर्प, व्याघ्र, गज और सिंहको भी उपायोंसे वशमें कर लेते हैं तो जागरूक बुद्धिमान् पुरुषोंके लिए जिनदेवको आधीन करना क्या कठिन चीज है?"

और भी कहा है:—

"वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया धीर्गरीयसी।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः॥"

"बुद्धि विद्यासे अधिक गुरु है—महत् है। बुद्धिहीन मनुष्य उसी तरह विनस जाते हैं जैसे सिंह बनानेवाले वे तीन पंडित।"

मकरध्वज इस बातको सुनकर मोहसे कहने लगा—मोह, यह बात किस प्रकारकी है ? मोह कहने लगा:—

*** २ अथाऽस्ति कस्मिंश्चित् प्रदेशे पौण्ड्रवर्द्धनं नाम नगरम्। तत्र च शिल्पि(ल्प)कारक-चित्रकारक-वणिक्सुत-मन्त्रसिद्धाश्चेति चत्वारि मित्राणि स्वशास्त्रपारङ्गतानि सन्ध्यासमये एकत्रोपविश्य परस्परं सुखगोष्ठीं कुर्वन्ति स्म। एवं तेषां चतुर्णां मित्रत्ववर्तमानानां कतिपयैर्दिवसैः शिल्पि(ल्प) कारेण सन्ध्यासमये तान्त्रीनाहूय एकत्रोपविश्य वचनमेतदभिहितम्—अहो, यदहं भणिष्यामि तद्यूयं करिष्यथ ? तदा तच्छ्रुत्वा ते त्रयः प्रोचुः—भो मित्र, तव वचनं कस्मान्न कुर्मो वयम् ?**

उक्तं च यतः—

"मित्राणां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति।
तस्य नाशो(शं) विजानीयात् यद्भविष्यो यथा मृतः।।६।।"

अथ शिल्पि(ल्प)कारोऽवोचत्—कथमेतत् ? ते प्रोचुः—

* २ किसी प्रदेशमें पौण्ड्रवर्धन नामका नगर था। इस नगरमें अपने-अपने शास्त्रमें पारंगत चार मित्र रहते थे। उनमेंसे एक शिल्पकार था, एक चित्रकार था, एक वणिक्-पुत्र था और एक मन्त्र-शास्त्रका जानकार था। चारों मित्र प्रतिदिन सन्ध्या-समय एक स्थानपर बैठकर विनोद-गोष्ठी किया करते थे। कुछ दिनोंके पश्चात् एक बार शिल्पकारने अपने तीनों मित्रों को सन्ध्याके समय निश्चित स्थानपर बुलाया और कहने लगा—क्या हम जिस बातको कहेंगे उसे

आप लोग स्वीकार करेंगे ? मित्र शिल्पकारकी बात सुनकर तीनों मित्र कहने लगे—सखे, हमलोगोंने आपकी बात कभी टाली भी है ? क्योंकि हमें मालूम है—

"मित्राणां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति ।
तस्य नाशं विजानीयाद् यद्भविष्यो यथामृतः ।।"

"जो अपने हितैषी मित्रोंकी बात नहीं मानता है, उसकी यद्भविष्यके समान मृत्यु हो जाती है ।"

इस बातको सुनकर शिल्पकार कहने लगा—महाराज, आप यह कैसी बात कह रहे हैं ? इसका खुलासा कीजिए । शिल्पकारकी बात सुनकर वे मित्र कहने लगे ।—

* ३ अथास्ति कस्मिंश्चित् स्थाने पद्मिनीखण्डमण्डितो जलाशयः । तत्र ह्रदे महास्थूलास्त्रयो मत्स्याः सन्ति । किंनामधेयास्ते ? अनागतविधाता प्रत्युत्पन्नमतिर्यद्भविष्यश्चेति वसन्ति स्म । एवं तत्र जलाशये कतिपयैर्दिवसैर्मीनलुब्धकाः परिभ्रमन्तश्चागताः । अथ तैस्तं जलाशयं दृष्ट्वैतदभिहितम्—अहो, अस्मिन् जलाशये बहवो मत्स्याः सन्ति । तत्प्रातरागत्याऽत्र जालं प्रक्षिप्य नेतव्या एते । एवमुक्त्वा ते सर्वेऽपि मीनलुब्धकाः स्वस्थानं प्रति निर्जग्मुः अथ तेषां कुलिशपातमिव वचनमाकर्ण्य अनागतविधाता तावाहूय वचनमेतदुक्तवान्—अहो, भवन्तौ कतिपयदिवसपर्यन्तमात्मनो जीवितमिच्छतः ? तच्छ्रुत्वा प्रत्युत्पन्नमतिरवादीत्—भो मित्र, किं त्वमेवं ब्रूषे ? स आह—अहो मित्र, अद्य मीनघातकैरत्रागत्य जलाशयं दृष्ट्वा एतदेवाभिहितम्—'अहो प्रभूतमत्स्योऽयं जलाशयोऽस्ति । तत्प्रभातेऽस्मिन्नागन्तव्यम् ।' एवमुक्त्वा ते निर्गत-

न्तः । तदवश्यं प्रभाते धीवरा अत्रागत्य अस्मान्वधिष्यन्ति । तच्छीघ्रमन्यत्र गन्तव्यम् । उक्तं च यतः—

"त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥७॥"

तदाकर्ण्य सः प्रत्युत्पन्नमतिराह—भो मित्र, एवं भवतु । एवं द्वयोर्वचनं श्रुत्वा यद्भविष्यो विहस्य प्रोवाच—अहो, भवन्तौ परस्परं किं मन्त्रयतः ? मरणं खलु यदस्मि जलाशयेऽन्यत्र-अपि गते सति किन्न भविष्यति ? उक्तं च यतः—

"अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥८॥
नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति ॥९॥"

अन्यच्च—

"यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥१०॥"

तदन्यत्रापि गते सति यद्भाव्यं तदवश्यं भविष्यति । अन्यच्च, धीवराणां वचनमात्रश्रवणात् पितृपैतृकोपार्जितं (तौ) जलाशयं (यः) त्यक्तुं किं युज्यते ? तदहं नाऽऽगच्छामि । एवं तस्य यद्भविष्यस्य वचनं श्रुत्वा तावूचतुः—भो यद्भविष्य, यदि त्वं नाऽऽगच्छसि, तदाऽऽवयोः कोऽपि दोषो नास्ति । एवमुक्त्वा तावन्यजलाशयमाटतुः । ततोऽनन्तरं मीनघातकाः प्रभाते तत्रागत्य जालं प्रक्षिप्य यद्भविष्येन सहाऽन्यानपि जलचरांश्चिन्युः । अतो वयं ब्रूमः—"मित्राणां हितकामानाम्' इत्यादि ।

* ३ किसी स्थानमें कमलोंसे सुशोभित एक जलाशय था। उस जलाशयमें अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्भविष्य नामके तीन स्थूलकाय मत्स्य रहते थे। इस प्रकार रहते-रहते इन्हें बहुत दिन बीत गये।

कुछ दिनोंके पश्चात् उस जलाशयके निकट घूमते-घामते कुछ धीवर आये। धीवर इस जलाशयको देखकर आपसमें कहने लगे :—

'देखो, इस तालाबमें कितने अधिक मत्स्य हैं। अतः यह ठीक होगा कि हमलोग यहाँ सुबह आवें और तालाबके जलको छानकर उन्हें ले जावें।' साथियोंने भी इस प्रस्तावका समर्थन किया और वे अपने-अपने घर चले गये।

अनागतविधाताको इन लोगोंकी बात सुनकर ऐसा मालूम हुआ जैसे उसकी छातीमें किसीने वज्र मार दिया हो। उसने अपने साथी मत्स्योंको बुलाकर कहा:—आप लोग क्या कुछ दिनतक और जीना चाहते हैं? अनागतविधाताकी बात प्रत्युत्पन्नमतिको बड़ी असंगत-सी मालूम हुई। वह अपने पूर्व साथीसे कहने लगा-मित्र, आप यह बात क्यों कह रहे हैं?

अनागतविधाता कहने लगा:—मित्र, मैंने यह बात इसलिए कही है कि आज कुछ धीवर यहाँ आये थे। उन्होंने इस तालाबको देखकर यह कहा कि—"इसमें बहुत मत्स्य हैं। इसलिए हमलोग सुबह यहाँ ही आवें।" इतना कहकर वे चले गये। वे लोग प्रातः यहाँ अवश्य ही आवेंगे और हमें पकड़कर ले जावेंगे। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम शीघ्र ही यहाँसे अन्यत्र प्रस्थान कर दें। कहा भी है :—

"कुलके स्वार्थके लिए एकका त्याग कर देना चाहिए। जनपदकी हित-दृष्टिसे ग्रामका त्याग कर देना चाहिए और अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए पृथिवीतककी चिन्ता न करनी चाहिए।"

अनागतविधाताकी बात सुनकर प्रत्युत्पन्नमति कहने लगा:—हाँ मित्र, अब हमें यहाँसे शीघ्र ही प्रस्थान कर देना चाहिए। पर जब इन दोनोंकी बात यद्भविष्यने सुनी तो वह हँसकर कहने लगा:–'अरे, आप लोग आपसमें क्या छोटी-सी बातपर विचार कर रहे हैं? यदि मरना ही होगा तो हम अन्यत्र भी चले जावें, मृत्युसे नहीं बच सकते। कहा भी है :–

'मनुष्य जिस वस्तुकी रक्षा नहीं करता है वह दैवसे रक्षित होकर बची रहती है। इसके विपरीत जिसकी खूब सावधानीसे रक्षा भी की जाय और यदि दैवकी अनुकूलता न हो तो वह विनस जाती है। अनाथको वनमें छोड़नेपर भी वह जीवित रह जाता है और अनेकों प्रयत्न करनेपर भी चीज घरमें नहीं बच पाती है।" अथ च–

"जो भवितव्य नहीं है, वह कभी नहीं होता है। और जो भवितव्य है वह होकर हो रहता है। भवितव्यताके न होनेपर हाथमें रक्खी हुई चीज भी नष्ट हो जाती है।" और–

"जिस प्रकार गायका बछड़ा हजार गायोंमेंसे अपनी माँको पहिचान लेता है। उसी प्रकार पूर्व जन्ममें किया गया कर्म कर्ताका अनुसरण करता है।"

इसलिए हम भले ही अन्यत्र चले जावें, परन्तु जो होनहार है वह अवश्य होकर रहेगी। एक बात और। धीवरोंके कथनको सुनने मात्रसे हमें पिता-पितामह आदिसे उपार्जित जलाशय न छोड़ देना चाहिए। इस दृष्टिसे मैं तो आपलोगोंके साथ नहीं जाना चाहता।'

यद्भविष्यकी इस प्रकारकी बात सुनकर वे दोनों साथी कहने लगे:—मित्र यद्भविष्य, यदि आप हमारे साथ नहीं आते हैं तो इसमें हमलोगोंका कोई अपराध नहीं है। यह कहकर अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्नमति नामके मत्स्य दूसरे जलाशयमें चले गये।

प्रभात हुआ। मछली पकड़नेवाले धीवर वहाँ आये। जाल डाले गये। और अन्य मछलियोंके साथ यद्भविष्यको पकड़कर वे ले गये।

मित्रगण शिल्पकारसे कहने लगे—इसलिए हम कहते हैं कि:—

मित्राणां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति ।
तस्य नाशं विजानीयाद् यद्भविष्यो यथामृतः ॥"

"जो अपने हितैषी मित्रोंकी बात नहीं मानता है, उसकी यद्भविष्यके समान मृत्यु हो जाती है।"

*** ४ एवं तेषां त्रयाणां वचनं श्रुत्वा शिल्पि(ल्प)कारोऽब्रवीत्—अहो, यद्येवं तद्देशान्तरं गत्वा किञ्चिद् द्रव्योपार्जनं क्रियते (येत) । कतिपयदिवसपर्यन्तं स्वदेशे स्थातव्यम् ।**

उक्तं च—

"परदेशभयोद्भीता बह्वालस्याः प्रमादिनः ।
स्वदेशे निधनं यान्ति काकाः कापुरुषाः मृगाः ॥११॥"

तथा च—

"कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥१२॥"

अन्यच्च—

"न चैतद् विद्यते किञ्चिद्यदर्थेन न सिद्ध्यति ।
यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥१३॥
यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥१४॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके, यस्यार्थाः स च जीवति ।१५।
इह लोकेऽपि धनिनां परोऽपि स्वजनायते ।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां तत्क्षणाद् दुर्जनायते ॥१६॥"

तथा च–

"पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि तत् (स) प्रभावो धनस्य च ॥१७॥
अर्थेभ्यो हि वृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्य यतस्ततः ।
प्रवर्त्तन्ते क्रियाः सर्वाः पर्वतेभ्य इवापगाः ॥१८॥
अशनं चेन्द्रियाणां (नादिन्द्रियाणीव) स्युः कार्याण्य-
खिलान्यपि ।
एतस्मात् कारणाद्वित्तं सर्वसाधनमुच्यते ॥२१॥"

एवं तस्य वचनमाकर्ण्य ते प्रोचुः–भो मित्र, एवं भवति युक्तम् । एवं पर्यालोच्य चत्वारो देशान्तरं निर्जग्मुः ।

* ४ इस प्रकार तीनोंकी बात सुनकर शिल्पकारने कहा—यदि यह बात है तो हमलोगोंको देशान्तरमें जाकर कुछ द्रव्योपार्जन करना चाहिए । अपने देशमें तो कुछ दिन रहना ही ठीक है । नीतिकारोंका कथन भी है कि :—

"जो पुरुष परदेश जानेसे डरते हैं, अति आलसी और प्रमादी हैं वे पुरुष नहीं हैं, बल्कि काक, कापुरुष और मृग हैं । तथा अपने देशमें रहते-रहते ही उनकी मृत्यु हो जाती है ।" अथ च—

"शक्तिशालियोंके लिए क्या वस्तु भारभूत है और व्यवसायियोंके लिए क्या दूर है ? विद्वानोंके लिए क्या विदेश है और मधुर-भाषियोंके लिए कौन पर है ?—कोई नहीं ।" एक बात और—

"संसारमें ऐसा कोई काम नहीं, जो धनसे सिद्ध न हो सके। इसलिए बुद्धिमान्‌को चाहिए कि वह प्रयत्नपूर्वक एक धनको ही संचित करे।

जिसके धन है, उसके मित्र हैं। जिसके धन है, उसके बन्धु हैं। जिसके धन है, वह लोकमें पुरुष है; और जिसके धन है, वही जीवित है।

संसारमें धनी पुरुषोंके लिए पराया भी आत्मीय जन-जैसा प्रतीत होता है। और दरिद्रोंके लिए अपना आदमी भी तत्काल दुर्जन-जसा मालूम देता है।" और—

"जो अपूज्य भी पूजा जाता है, अगम्य भी गम्य होता है और अवन्द्य भी वन्दित होता है—वह सब धनका प्रभाव है।

जैसे पर्वतोंसे निकली हुई नदियोंसे अनेक काम लिए जाते हैं उसी प्रकार सब तरफसे सुरक्षित वर्धमान धनसे भी अनेक उपयोगी कार्य निकाले जाते हैं।

धनसे पेट भरा जाता है और धनसे ही इन्द्रियोंके सब काम निकलते हैं। इसीलिए धन सबका साधन कहा गया है।"

इस प्रकार शिल्पकारकी बात सुनकर अन्य साथी कहने लगे—मित्र, आपका कहना बिलकुल ठीक है। हमें यही करना चाहिए। यह सोचकर वे चारों साथी देशान्तरके लिए चल पड़े।

ॐ ५ अथ ते चत्वारो यावद् गच्छन्ति तावदपराह्ण-मध्ये भयङ्करमरण्यमेकं प्रापुः। अथ तस्मिन्नरण्यमध्ये शिल्पि-(ल्प)कारेण तान् प्रति वचनमेतदभिहितम्—अहो, एवंविधं भयङ्करं स्थानं रात्रिसमये वयं प्राप्ताः। तदेकैको यामो जागरणीयः। अन्यथा चौरव्याघ्रादिभयात् किंचिद्विघ्नं

भविष्यति । अथ ते प्रोचुः—भो मित्र, युक्तमित्युक्तं भवता । तदवश्यं जागरिष्यामः । एवमुक्त्वा त्रयस्ते सुप्ताः ।

ततोऽनन्तरं शिल्पि(ल्प)कारो यावत् प्रथमं निजयामं जागर्ति तावत् तस्य निद्राऽऽगन्तुं लग्ना । ततोऽनन्तरं स निद्राभञ्जनार्थं काष्ठमेकमानीय कण्ठीरवरूपं महाभासुराकारं सर्वावयवसंयुतं चकार । तदनु चित्रकारान्तिकमाययौ शिल्पि(ल्प)कारः । ततोऽब्रवीत्—भो मित्र, निजयामजागरणार्थमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ । एवमुक्त्वा शिल्पि(ल्प)कारः सुप्तः ।

अथ चित्रकार उत्थितः सन् यावत् पश्यति तावदग्रे दारुमयं कण्ठीरवरूपं महारौद्रं घटितं ददर्श । ततोऽवदत्—अहो, अनेनोपायेनानेन शिल्पि(ल्प)कारेण निद्राभञ्जनं कृतम् । तदहमपि किंचित् करिष्यामि । एवं भणित्वा हरितपीतलोहितकृष्णप्रभृतीन् वर्णान् तस्योपरि उद्घृष्य दारुमयं कण्ठीरवरूपं विचित्रितवान् । ततोऽनन्तरं चित्रकारो मन्त्रसिद्धि(द्ध)सकाशमियाय । प्रोवाच भो मित्र, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रम् । एवमुक्त्वा चित्रकारः सुप्तवान् ।

अथ मन्त्रसिद्धो यावदुत्तिष्ठति तावत् सम्मुखं कण्ठीरवरूपं दारुमयं महारौद्रं सर्वावयवसम्पन्नं जीवन्मिव(वदिव) विलोक्यातिभीतः । ततः प्रोवाच—अहो, इदानीं किं कर्त्तव्यम् ? सर्वेषामद्य मरणमवश्यमागतम् । एवमुक्त्वा मन्दं मन्दं गत्वा मित्राणि प्रत्याह—अहो, उत्तिष्ठत, उत्तिष्ठत । अस्या अटव्या मध्ये श्वापदमेकमागतमस्ति (श्वापदं एक आगतोऽस्ति) एवं तस्य कोलाहलमाकर्ण्य त्रयस्त उत्थिताः । ततस्ते प्रोचुः—भो मित्र, किमेवं व्याकुलयसि ? अथासौ

जजल्प–अहो, पश्यताहो पश्यत । एष (अयं) चञ्चापवं (दः) मया मन्त्रेण कीलितम(तोऽ)स्ति । ततः सम्मुखं नायाति । तदाकर्ण्य ते विहस्य प्रोचुः–भो मित्र, दारुमयं श्वापदमेनं किं न जानासि ? तदस्मिन् दारुमये पंचाननरूपे निजविद्या प्रभाव आवाभ्यां दर्शितः । तच्छ्रुत्वा मन्त्रसिद्धस्तद्दारुमयं सिंह (मयसिंह) समीपं गत्वा यावत् पश्यति तावदति ललज्जे ।

ततः स मन्त्रसिद्ध आह–अहो, प्रसङ्गेनानेन युवाभ्या-मस्मिन् दारुमये पंचाननरूपे निजविद्याकौशल्यं दर्शितम् । तदधुना मम विद्याकौतूहलं पश्यत । यदि जीव(श्य)मान-मेनम करोमि तदहं मन्त्रसिद्धो न भवामि ।

एवं मन्त्रसिद्धवचनमाकर्ण्य बुद्धिमता वणिक्पुत्रेणैवं मनसि चिन्तितम्–अहो, यदि कथमपि जीव(श्य)मानमिमं करिष्यति तदहं दूरस्थितो भूत्वा सर्वमेतत् पश्यामि । यतो मणिमन्त्रौषधीनामचिन्त्यो हि प्रभावः । एवं चिन्तयित्वा यावद्गच्छति तावत् तावूचतुः–भो मित्र, कुतस्त्वं गच्छसि ? ततो वणिक् प्राह–अहो, मूत्रोत्सर्गं कृत्वाऽऽगमिष्यामि । एव-मुक्त्वा यावद् गच्छति तावत् स वणिक्पुत्रो वृक्षमेकं सम्मुख-मद्राक्षीत् । कथंभूतम् ?

छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैरालीढनीलच्छदः
कीटैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः ।
विश्रब्धो मधुपैर्निपीतकुसुमैः श्लाघ्यः स एष द्रुमः
सर्वाङ्गैर्बहुसत्त्वसङ्घसुखदो भूभारभूतोऽपरः ॥२॥

एवं विधं वृक्षमारुह्य तत् सर्वमपश्यत् ।

ततोऽनन्तरं मन्त्रसिद्धो ध्यानसिद्धो भूत्वा मन्त्रस्मरणं कृत्वा तस्मिन् दारुमये जीवकलां चिक्षेप। अथाऽसौ जीव (व्य)मानो भूत्वा कृतघनघोरघर्घराट्टहास उच्चलितचपेटः खरिराङ्गारोपनेत्र उच्छलितललितपुच्छच्छटाटोपोऽतिभयङ्कर-स्त्रयाणामभिमुखो भूत्वा यथासङ्ख्यं निपातिता: (तितवान्)। अतोऽहं ब्रवीमि-"वरं बुद्धिर्न" इत्यादि।

* ५ चलते-चलते अपराह्नके समय वे किसी भयंकर जंगलमें जा पहुँचे। जैसे ही वे इस भीषण अरण्यमें पहुँचे, सन्ध्या हो आयी। उनमेंसे शिल्पकार कहने लगा—देखो, हम लोग रातके समय कैसे भयंकर वनमें आ पहुँचे हैं। यहाँ हम लोगोंमेंसे प्रत्येकको एक-एक पहर तक जागरण करना चाहिए। अन्यथा चोर या व्याघ्र आदि वन्य जन्तुसे कुछ अनिष्ट हो सकता है। अन्य साथियोंने शिल्पकारकी बातका समर्थन करते हुए कहा—मित्र, आप ठीक कह रहे हैं। हम लोगोंको एक-एक पहरतक अवश्य जागरण करना चाहिए। इस प्रकार कह कर वे तीनों साथी सो गये।

पहला पहर शिल्पकारको जागरणमें व्यतीत करना था। इसलिए नींद न आनेके लिए उसने एक लकड़ी लाकर महाभयंकर सर्वाङ्गपूर्ण सिंह तैयार किया। इतनेमें उसका जागरण-काल समाप्त हो गया और वह चित्रकारको जगानेके लिए उसके पास गया और कहने लगा—मित्र, उठिये, अब आपके जगनेका समय हो गया है। इस तरह वह चित्रकारको उठाकर सो गया।

चित्रकारने जागकर जैसे ही नजर पसारी तो उसे लकड़ीका महाभयंकर सिंह दिखलायी दिया। उसे देखकर और कुछ सोचकर चित्रकार कहने लगा—'अच्छा, इस उपायसे शिल्पकारने अपनी नींद तोड़ी है। अब मुझे भी कुछ नींद न लेनेका यत्न करना चाहिए।'

इस प्रकार सोचकर उसने उस सिंहको लाल-काले-पीले और नीले रंगोंसे चित्रित करना प्रारम्भ कर दिया। जब चित्रकार उस सिंहको इस प्रकार रंगानुरञ्जित कर चुका तो मन्त्रसिद्धिके निकट गया और बोला—मित्र, उठो-उठो, अब तुम्हारे जगनेका नम्बर आ गया है। इस प्रकार मन्त्रसिद्धिको जगाकर चित्रकार सो गया।

मन्त्रसिद्धि जैसे ही उठा, उसने अपने सामने एक महाभयंकर, सर्वांगपूर्ण, जीता-जागता लकड़ीका सिंह देखा और इसे देखते ही वह डर गया। उसने सोचा - इस समय क्या करना उचित है। मालूम देता है, आज सबकी मौत आ गयी है। यह सोचते ही वह तुरन्त धीमी गतिसे मित्रोंके निकट पहुँचा और उनसे कहने लगा—मित्रों, उठिए, उठिए। जंगलमें कोई भयंकर जन्तु आ गया है।

मन्त्रसिद्धिका कोलाहल सुनकर तीनों साथी उठ बैठे। वे कहने लगे—मित्र, आप हम लोगोंको व्यर्थ ही क्यों व्याकुल कर रहे हैं? मन्त्रसिद्धि बोला—अरे, देखिए तो यह सामनेका जन्तु, जिसे मैंने मन्त्रसे कीलित कर दिया है और जो इसी कारणसे आगे नहीं बढ़ पा रहा है। मन्त्रसिद्धिकी बात सुनकर उसके साथी हँस पड़े और कहने लगे—अरे मित्र, यह तो लकड़ीका शेर है। क्या तुम इतना ही नहीं पहचान सके। वे आगे कहने लगे—हम दोनोंने इस लकड़ीके केसरीमें अपनी विद्याका चमत्कार दिखलाया है। यही कारण है जो तुम इसे सजीव सिंह समझ बैठे।

मित्रोंकी बात सुनकर मन्त्रसिद्धि उस लकड़ीके सिंहके पास गया और उसे वास्तविक लकड़ीका शेर पाकर बहुत लज्जित हुआ। वह अपने साथियोंसे कहने लगा—मित्रों, इस लकड़ीके शेरमें प्रसंगानुसार आप लोग तो अपनी विद्याका चमत्कार दिखला चुके हैं। अब मेरी विद्याका भी चमत्कार देखिए। अपने विद्या-बलसे मैं इसे जीवित न कर दूँ तो मैं मन्त्रसिद्धि ही किस कामका?

मन्त्रसिद्धिकी बातका अन्य मित्रोंने तो खयाल नहीं किया लेकिन वणिक्पुत्रके मनमें उसकी बात समा गयी। उसने सोचा, कदाचित् मन्त्रसिद्धिने इस लकड़ीके शेरको जीवित कर दिया तो महान् अनिष्ट उपस्थित हो जानेकी आशङ्का है। इसलिए मुझे दूर रहकर ही इस घटनाका निरीक्षण करना चाहिए। क्योंकि मणि, मन्त्र और औषधियोंका अचिन्त्य प्रभाव हुआ करता है। इस प्रकार सोचकर जैसे ही वणिकपुत्र वहाँसे चलने लगा, उन दोनों मित्रोंने उससे पूछा—मित्र कहाँ जा रहे हो ? वणिकपुत्रने उत्तरमें कहा—मैं लघुशङ्का करने जा रहा हूँ। अभी आता हूँ। इतना कहकर जसे ही वणिक्पुत्र वहाँसे चला, उसे सामने एक वृक्ष दिखलायी दिया—

"उस वृक्षकी छायामें मृग सो रहे थे, पत्तोंमें पक्षियोंने घोंसले बना रक्खे थे, खोखलोंमें कीड़े निवास कर रहे थे, शाखाओंपर बन्दर डेरा डाले हुए थे और भ्रमर जिसके कुसुम-रसका पान कर रहे थे।

वणिकपुत्रने इस वृक्षको देखकर कहा – वास्तवमें इस प्रकारके वृक्षका ही जन्म सार्थक है, जो अपने सर्वांगसे अनेक प्राण-धारियोंको सुख दे रहा है। अन्य प्रकारके वृक्ष, जिनसे किसी भी सचेतन का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, पृथ्वीके लिए केवल भार-स्वरूप ही हैं।"

इस तरह विचारकर वणिकपुत्रने अपनी निद्रा भंग कर दी और वृक्षपर चढ़कर मन्त्रसिद्धि के क्रिया-काण्डको देखने लगा।

तदुपरान्त मन्त्रसिद्धि ध्यानारूढ़ होकर मन्त्रका जाप करने लगा और इस प्रकार उसने इस काष्ठमय शेरमें जीवन डाल दिया। शेर जीवित हो गया। उसने मेघकी तरह भयंकर गर्जन और अट्टहास किया। नेत्रों को पलाशके अङ्गारेकी तरह लाल किया। और अपनी एक ही उछाल में पूँछको हिलाता हुआ वह तीनोंके सामने आ गया और तीनों को मारकर गिरा डाला।

मोह कामसे कहने लगा—इसलिए मैं कहता हूँ—

"वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया धीर्गरीयसी ।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ।।"

"विद्या से बुद्धि अधिक गुरु है—महत् है। बुद्धिहीन मनुष्य उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सिंह बनानेवाले वे तीन पण्डित।"

श्रुत्वा तद्वाक्यं कामः प्राह—भो मोह, सत्यमिदमुक्तं भवता । बुद्धया विना किंचिन्न भवति । परमेतत् पृच्छामि यत्त्वया सैन्यमेलनं कृतं तद्विज्ञानीतमस्ति नो वा ? ततो मोहः प्राह—हे देव, मया सैन्यसमूहं कृत्वा परिवारं प्रत्येतदभिहितम्—अरे, यावदहं स्वाम्यादेशं गृहीत्वाऽऽगमिष्यामि, तावद्दूराद्दूरत्रैव स्थातव्यम् । एवमुक्त्वा तव पार्श्वे समागतोऽहम् । तदिदानीं तवादेशः प्रमाणम् ।

एतद्वचनं श्रुत्वा परमं सन्तोषं गत्वा मदनस्तं मोहमालिङ्ग्य प्रोवाच—मोह, त्वमेवाहमेकः सचिवः । सर्वमेतद्राज्यं त्वया रक्षणीयम् । तत् किमेतन्मां पृच्छसि ? यत्ते प्रतिभासते तदवश्यं कर्त्तव्यं त्वया । उक्तं च यतः—

"मन्त्रिणां भिन्नसन्धाने भिषजां सन्निपातके ।
कर्मणि युज्यते प्रज्ञा स्वस्थे वा को न पण्डितः ।।२०।।"

तच्छ्रुत्वा मोहोऽप्योचत् देव, यद्येवं तदादौ यावत् सैन्यमागच्छति तावद्दूतः प्रस्थाप्यते । उक्तं च—

"पुरा दूतः प्रकर्त्तव्यः, पश्चाद् युद्धं प्रकारयेत् ।
तस्माद् दूतं प्रशंसन्ति नीतिशास्त्रविचक्षणाः ।।२१।।

दूतेन सबलं सैन्यं निर्बलं ज्ञायते ध्रुवम् ।
सैन्यसंख्या च दूतेन दूतात् परबलं प्रभोः ॥२२॥"

* ६ इस घटनाको सुनकर मकरध्वज कहने लगा—मोह, तुमने बिलकुल सच कहा है, बुद्धिके बिना कुछ नहीं हो सकता। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुमने जो सैन्य-संमेलन किया है, उसे यहाँ लाये हो या नहीं ?

उत्तरमें मोह कहने लगा—देव, मैंने सैन्य-संमेलन करके उससे यह कह दिया है कि मैं स्वामीकी आज्ञा लेकर अभी आता हूँ। आप तबतक यहीं ठहरिए।' इस प्रकार कहकर मैं आपके पास चला आया हूँ। अब आप जो आज्ञा दें, मैं उसका पालन करनेके लिए प्रस्तुत हूँ।

मोहकी बात सुनकर मकरध्वजको बड़ा संतोष हुआ। उसने मोहको अपनी छातीसे लगा लिया और कहने लगा मोह, तुम्हीं तो हमारे मन्त्री हो। इस समस्त राज्यकी तुम्हें ही रक्षा करनी है। इसलिए इस समय मुझसे क्या पूछते हो ? जो तुम्हें उचित मालूम दे, करो। नीतिज्ञोंने कहा भी है:—

"जब राज्यपर गंभीर संकट उपस्थित होता है तब मन्त्रियोंकी बुद्धिकी परीक्षा होती है और सन्निपात होने पर वैद्योंकी। स्वस्थ अवस्थामें तो सभी कुशल कहलाते हैं।"

मकरध्वजकी बात सुनकर मोहने कहा—महाराज, आप ठीक कह रहे हैं। फिर भी सेनाके आनेके पहले हमें दूत भेजना चाहिए। कहा भी है:—

'पहले दूत भेजना चाहिए और फिर युद्ध करना चाहिए। नीतिशास्त्रके पंडित दूतकी इसीलिए प्रशंसा करते हैं।

वस्तुतः दूतसे ही सेनाकी सबलता और निर्बलताका पता चलता है। और सेनाकी संख्याका ज्ञान भी दूतसे ही होता है। इसलिए दूत राजाके लिए बड़ा भारी बल है।"

* ७ अथ कामः प्राह–हे मोह, युक्तमेतत् त्वयोक्तम् । युक्तो दूतः प्रक्रियते(येत) । स आह–देव, रागद्वेषाविमावाहूय दूतत्वं दीयते । कामः प्राह–हे मोह, रागद्वेषौ दूतत्वे कुशलौ भवतः किम् ? स मोह आह–देव, इमौ वञ्चयित्वा कावन्यौ दूतवरौ तिष्ठतः ?

उक्तञ्च–

"एतावनादिसम्भूतौ रागद्वेषौ महाग्रहौ ।
अनन्तदुःखसन्तानप्रसूतेः प्रथमाङ्कुरौ ॥२३॥"

तथा च–

"स्वतत्त्वानुगतं चेतः करोति यदि संयमी ।
रागादयस्तथाप्येते क्षिपन्ति भ्रमसागरे ॥२४॥"

तथा च–

"अयत्नेनापि जायेते चित्तभूमौ शरीरिणाम् ।
रागद्वेषाविमौ वीरौ ज्ञानराज्याङ्गघातकौ ॥२५॥
क्वचिन्मूढं क्वचिद्भ्रान्तं क्वचिद्भीतं क्वचिद्रतम् ।
शङ्कितञ्च क्वचित् क्लिष्टं रागाद्यैः क्रियते मनः ॥२६॥"

एवं रागद्वेषयोः पौरुषमाकर्ण्य तौ द्वावाहूय निजाङ्गवसनाभरणदानेन प्रभूतसम्मानौ कृत्वा वचनमेतदभिहितं मकरध्वजेन–अहो, युवयोर्दूतत्वं किञ्चिदस्ति; तत् कर्त्तव्यम् । अथ तौ रागद्वेषावूचतुः–करिष्यावोऽवश्यम् । देवः कथयतु । ततः स काम आचष्टे–अहो, तद्युवाभ्यां चारित्रपुरं गत्वा जिनेश्वरं प्रत्येवं वक्तव्यम्–भो जिन, यदि त्वं सिद्धयङ्गनापरिणयनं करोषि तत्त्रैलोक्यमल्लस्याज्ञाऽस्ति । अन्यच्च यदस्माकं त्रिभुवनसारं रत्नत्रयं न ददासि तत्प्रभाते सकल-

सैन्यसमन्वितो रतिनाथः समागमिष्यति । एवमुक्त्वा तौ प्रस्थापयामास ।

❀ ७ मकरध्वजने कहा—मोह, तुमने बहुत उपयुक्त बात सुझायी है। लेकिन दूत कार्य-कुशल होना चाहिए।

मोहने कहा—महाराज, राग और द्वेषको बुलवाइए और इन्हें दूतत्वका भार समर्पित कीजिए।

काम कहने लगा – मोह, क्या राग और द्वेष सफलताके साथ दूतत्वका निर्वाह कर सकेंगे ?

मोहने कहा—स्वामिन्, राग-द्वेषको छोड़कर और कौन प्रशस्त दूत हो सकता है ? ये दूतत्वके लिए बहुत सुयोग्य हैं। कहा भी है :—

"राग और द्वेष अनादिकालीन महान् ग्रह हैं और ये ही अनन्त दुःख-परम्पराके प्रथम अङ्कुर हैं।" और—

"यदि संयमी अपनी चित्तवृत्तिको आत्माभिमुख करता है तो भी राग और द्वेष उसे भवसागरमें डुबोते हैं।" तथा—

"ये राग और द्वेष देहधारियोंके मनमें अनायास ही हो जाते हैं। ये महान् वीर हैं और ज्ञानराज्यके समूल विध्वंसक हैं।

❤राग और द्वेष मनको कहीं भुलाते हैं, कहीं भ्रमाते हैं। कहीं डराते हैं कहीं रुलाते हैं। कहीं शंकित करते हैं और कहीं दुख देते हैं।"

कामने राग और द्वेषका इस प्रकारका विक्रम-वर्णन सुनकर उन्हें बुलवाया और अपने शरीरके वस्त्र और आभूषण देकर उनका खूब सम्मान किया। तदुपरान्त उनसे कहा—क्या आप लोग कुछ दूत-कार्य कर सकते हैं ? राग-द्वेष कहने लगे—देव, कहिए क्या आज्ञा है ? हम अवश्य उसका अनुपालन करेंगे।

काम कहने लगा—यदि आप दूत-कार्य कर सकते हैं तो चारित्रपुरमें जाकर जिनेश्वरको कहिए कि—भो जिन, सिद्धि-अङ्गनाके साथ जो तुम विवाह करने जा रहे हो सो क्या तुम त्रैलोक्यके स्वामी कामदेवकी आज्ञा ले चुके हो? साथ ही यह भी कहना कि वह त्रिभुवनके महान् मूल्यवान् तीन रत्न वापिस दे दे। अन्यथा प्रभात समय कामदेव समस्त सेनाके साथ उसके ऊपर चढ़ आवेंगे।

इस प्रकार कामने राग और द्वेषको दूतत्वका भार सौंपकर अपने यहाँसे विदा कर दिया।

* ८ अथ तौ तेन विषममार्गेण गच्छन्तौ यावज्जिननाथस्थानं सम्प्राप्तौ तावदतिक्षीणौ बभूवतुः। ततस्तौ द्वारस्थितौ दृष्ट्वा सञ्ज्वलनोऽप्राक्षीत्—अहो किमर्थं जिनपार्श्वे युवाभ्यामागमनं कृतम्? अथ तावूचतुः—

भो सञ्ज्वलन, स्वाम्यादेशात् दूतकार्यमावाभ्यामत्रागमनं कृतम्। ततः संज्वलनो बभाषे—अहो भवत्वेवं परं किन्तु (परन्तु) युवाभ्यां वीरवृत्तिं त्यक्त्वा किमेतद् दूतत्वं कृतम्? अथ तावूचतुः—हे संज्वलन, त्वं किञ्चिन्न वेत्सि। स्वाम्यादेशः सेवकेन कृत्योऽथवाऽकृत्यः परन्तु कर्तव्यः, यतोऽन्यथा राजप्रियो न भवति।

उक्तञ्च—

"यो रणं शरणं यद्वन्मन्यते भयवर्जितः।
प्रवासं स्वपुरावासं स भवेद्राजवल्लभः ॥२७॥
न पीड्यते यः क्षुधया निद्रया यो न पीड्यते।
न च शीतातपाद्यैश्च स भवेद्राजवल्लभः ॥२८॥
न गर्वं कुरुते माने नापमाने च रुष्यति।
स्वाकारं रक्षयेद्यस्तु स भवेद्राजवल्लभः ॥२९॥

ताडितोऽपि दुरुक्तोऽपि दंडितो पि महीभुजा ।
यो न चिन्तयते पापं स भवेद्राजवल्लभः ॥३०॥
नाहूतोऽपि समभ्येति द्वारे तिष्ठति यः सदा ।
पृष्टः सत्यं मितं ब्रूते स भवेद्राजवल्लभः ॥३१॥
युद्धकालेऽग्रगः सर्वः सदा पृष्ठानुगः पुरे ।
प्रभुद्वाराश्रितो हर्म्ये स भवेद्राजवल्लभः ॥३२॥
प्रभुप्रसादजं वित्तं सुपात्रे यो नियोजयेत् ।
वस्त्राद्यञ्च दधात्यङ्गे स भवेद्राजवल्लभः ॥३३॥"

अन्यच्च, भो संज्वलन, सेवाधर्मोऽयं महादुःसहो भवति । उक्तं च यतः—

"सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत् कृतम् ।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ॥३४॥"

तथा च—

"जीवन्तो पि मृताः पञ्च श्रूयन्ते किल भारत ।
दरिद्री व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥३५॥"

अन्यच्च—

"वरं वनं वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवितम् ।
पुंसां विवेकतत्त्वानां सेवया न च सम्पदः ॥३६॥"

तथा च—

"वरं वनं सिंहगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम् ।
तृणेषु शय्या वरजीर्णवल्कलं
न सेवके राज्यपदादिकं सुखम् ॥३७॥"

तथा च—

"प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखीयति सुखहेतोः को मूर्खः सेवकादपरः ॥३८॥"

अन्यच्च—

"भावैः स्निग्धैरुपकृतमपि द्वेषितामेति कश्चित्
साध्यादन्यैरपकृतमपि प्रीतिमेवोपयाति ।
दुर्ग्राह्यत्वान्नृपतिवचसां नैकभावाश्रयाणां
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥३९॥"

तथा च—

"मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे भवति च तथा दूरतश्च प्रमादी ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥४०॥"

* ८ राग और द्वेषको जिनराजके स्थानपर पहुँचनेके लिये अत्यन्त विषम मार्गसे जाना पड़ा और वहाँ पहुँचते-पहुँचते वे अत्यन्त क्षीण और निष्प्रभ हो गये । अंतमें ये संज्वलनके पास पहुंचे और कहने लगे—मित्र संज्वलन, तुम हम लोगोंको किसी प्रकार जिनराजके पास पहुंचा दो ।

संज्वलन कहने लगा - तुम लोग जिनराजके पास किसलिए आए हो ?

राग-द्वेष कहने लगे—अपने स्वामीकी आज्ञापालन करनेके लिए हम लोग यहाँ आए हैं ।

संज्वलन फिर कहने लगा—पहले यह तो बताओ, तुमने अपनी वीर-वृत्ति छोड़कर यह दूत-कार्य क्यों अङ्गीकार किया ?

राग-द्वेष बोले—संज्वलन, तुम बिलकुल मूर्ख हो ! स्वामीकी आज्ञा, चाहे वह अच्छी हो या बुरी, अवश्य शिरोधार्य होनी चाहिए। अन्यथा भृत्य राज-प्रिय नहीं हो सकता। नीतिकारोंका कथन है कि:—

"जो भृत्य निडर होकर रणको भी शरण समझता है, और परदेशमें रहनेको स्वदेश-आवासके तुल्य मानता है, वह राजाके लिए स्नेह-पात्र होता है।

जो भृत्य क्षुधा, नींद, सर्दी और गर्मीसे उद्विग्न नहीं होता है, वह राजाके लिए प्रेम-पात्र होता है।

जो सम्मानके प्रसङ्गपर गर्व नहीं करता है, अपमानित होनेपर अपमानका अनुभव नहीं करता है और अपने बाह्य आकारका गोपन करता है उससे राजा स्नेह करते हैं।

जो भृत्य राजाके द्वारा ताड़ित होनेपर भी, दुतकारे जाने पर भी, दण्डित होने पर भी उसके सम्बन्धमें पाप नहीं सोचता है, वह राजाका स्नेह-भाजक होता है।

जो भृत्य बिना बुलाये भी सदा राज-द्वारमें उपस्थित रहता है और प्रश्न किये जाने पर सत्य और परिमित बोलता है वह राजाके लिए प्यारा होता है।

जो भृत्य सदा युद्धकालमें राजाके आगे चलता है, नगरमें पीछे चलता है और भवनपर उसके दरवाजे पर उपस्थित रहता है, वह राजाका प्रिय पात्र कहलाता है।" साथ ही,

"जो भृत्य प्रभुके प्रसादसे प्राप्त हुए धनको सुपात्रमें लगाता है और वस्त्र आदिको शरीरमें पहिनता है, वह राजाके स्नेहका पात्र कहलाता है।" अथ च,

संज्वलन, यह सेवा धर्म अत्यन्त कठिन काम है। कहा भी है :—

"देखो, सेवा-वृत्तिसे धन कमाने वालोंने क्या नहीं किया ? सब कुछ किया। अरे, इन मूर्खोंने, और तो क्या, शरीरकी स्वतन्त्रता भी बेच डाली !" अथ च,

"विज्ञजन कहते हैं कि ये पाँच प्राणी जीवित होने पर भी मृतकवत् हैं—दरिद्री, व्याधि-ग्रस्त मूर्ख, प्रवासी और नित्य सेवा करने वाला।" तथा,

"वनवास उत्तम है, भिक्षा माँगना उत्तम है। भार ढोकर जीविका चलाना उत्तम है। किन्तु विवेकी पुरुषोंका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे सेवा-वृत्तिसे द्रव्य उपार्जित करें।" और—

"सेवा करनेवालेको छोड़कर अन्य कोई ऐसा मूर्ख नहीं है जो उन्नतिके लिए प्रणाम करता है, जीवनके लिए प्राणों तक का उत्सर्ग करता है और सुखके लिए दुःख उठाता है।" इसी प्रकार—

"यदि सेवक राजाओंकी विविधमुख भाव-भङ्गिमाको नहीं समझता है, तो वह कभी स्निग्ध भावसे काम करनेपर भी राजाका अप्रीति-पात्र बना रहता है और कभी राजाका अपकार करनेपर भी स्नेह-पात्र माना जाता है। इस तरह यह सेवा-धर्म इतना दुर्बोध है कि पहुँचे हुए योगी भी इसे ठीक तरहसे नहीं समझ पाते।" तथा—

"सेवक यदि मौन रहता है तो लोग उसे गूंगा कहते हैं। यदि वह बात करनेमें चतुर है तो उसे बकवादी और असम्बद्ध प्रलापी कहा जाता है। यदि वह स्वामीके निकटमें रहता है तो धृष्ट कहलाता है और यदि दूर रहता है तो आलसी कहा जाता है। यदि क्षमाशील है तो भीरु कहलाता है और अनुचित बातको सहन नहीं करता है तो कुलीन नहीं कहलाता है। इस प्रकार सेवा-धर्म इतना दुर्बोध है कि पहुँचे हुए साधु भी इसे विधिवत् नहीं समझ सके हैं।"

* ६ एवं तदाकर्ण्य संज्वलनोऽब्रवीत्–अहो, युक्तमेतदुक्तं भवद्भ्याम्। सेवाधर्म एवंविधो भवति। एवं तदिदानीं किं प्रयोजनम्? तत् कथ्यताम्। अतस्तौ रागद्वेषावूचतुः–भो संज्वलन, जिनेन सह दर्शनं यथा भवति तथा त्वं कुरु। एवं श्रुत्वा सञ्ज्वलनः सचिन्तो भूत्वाऽब्रवीत–अहो, करिष्याम्येवम्। परन्तु युवयोर्जिनदर्शनं शुभतरं न भविष्यत्येवं मे प्रतिभासते। यतोऽयं जिनराजो मदननामाऽपि न सहते। तद्युवां दृष्ट्वा किंचिद्विघ्नं करिष्यति। तन्महाननर्थो भविष्यति। एवं तदाकर्ण्य तौ रागद्वेषौ कोपं गत्वा प्रोचतुः–भो संज्वलन, साधु साधु त्वमस्माकं सुहृत्, तत् त्वंच यद्येवं वदसि तद्विज्ञाप्यं केन कर्त्तव्यम्? तदभ्यागतेभ्यो वक्तुमेवं युज्यते? उक्तं च–

"एह्यागच्छ समाश्रयाऽऽसनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे,
का वार्ता त्वतिदुर्बलोऽसि कुशली प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्॥
एवं नीचजनेऽपि कर्त्तुमुचितं प्राप्ते गृहे सर्वदा,
धर्मोऽयं गृहमेधिनां निगदितः प्राज्ञैर्लघुः शर्मदः॥४१॥
दृष्टिं दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्यात्पुनः पुनः।
उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः॥४२॥"

तथा च–

"ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते प्रशस्या हि भूतले।
आगच्छन्ति गृहे येषां कार्यार्थं सुहृदो जनाः॥४३॥"

एतदाकर्ण्य संज्वलनोऽवोचत्–अहो, युष्मद्धितार्थमेतन्मयोक्तम् तद्युवयोर्द्वार्थमवगमितम्। तदहं स्वामिनं पृष्ट्वाऽऽगमिष्यामि। उक्तं च यतः—

"लभ्यते भूमिपर्यन्तं समुद्रस्य गिरेरपि ।
न कथंचिन्महीपस्य चित्तान्तं केनचित् क्वचित् ।४४।"

ततस्तावूचतुः–हे संज्वलन, एवं भवतु । परन्तु त्वया किंचिदावयोरशुभं न ग्राह्यम् । सर्वं क्षमितव्यम् । एवं श्रुत्वा संज्वलनोऽवोचत्–अहो युवाभ्यां गृहमेधिनां धर्म एवंविधोऽभिहितस्तदत्र किमशुभं ग्रहीष्यामि ?

* ६ राग-द्वेषकी इस प्रकार युक्ति-संगत बात सुनकर संज्वलनने कहा—' आपने सेवा-धर्मका बहुत वास्तविक चित्रण किया है। सचमुच सेवाधर्म इसी प्रकार परम गहन है। पर यह तो बतलाइए, आप यहाँ किस प्रयोजनसे आये हुए हैं ?

संज्वलनकी बात सुनकर राग-द्वेष कहने लगे—संज्वलन, जिस तरह बने, आप हम लोगोंको जिनराजका साक्षात्कार करा दीजिए। हम उन्हींसे भेंट करने आये हैं।

संज्वलन राग-द्वेषकी बात सुनकर चिन्तामें पड़ गया और कहने लगा—मित्र, मैं जिनराजके दर्शन करा तो सकता हूँ, लेकिन मुझे मालूम दे रहा है कि जिनराजसे भेंट करना आपके हितमें अच्छा न होगा। कारण यह है कि जिनराज कामका तो नाम ही नहीं सुनना चाहते हैं। फिर भेंट होनेपर कदाचित् उनके द्वारा आपका कुछ अहित हो गया तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा।

संज्वलनकी बात सुनकर राग-द्वेष कहने लगे—मित्र, आपका कहना बिलकुल यथार्थ है। पर मित्र होकर भी जब आप इस प्रकारकी बात कह रहे हैं तो आप ही बतलाइए, फिर हम किससे प्रार्थना करें ? इस समय हम आपके अभ्यागत हैं और अभ्यागतोंकी प्रार्थना तो अवश्य ही सुनी जानी चाहिए। नीतिज्ञों ने कहा भी है :—

"प्रत्येक गृहस्थका यह कर्त्तव्य है कि भले ही उसके घर निम्न श्रेणीका आदमी क्यों न आवे वह उसके साथ इस प्रकारका सुखद और सीमित व्यवहार अवश्य करे —

आइए, आइए। इस आसनपर बैठिए। आप तो बहुत दिनों में दिख रहे हैं। क्या बात है? आप तो बहुत दुर्बल हो गए हैं? आपके दर्शनसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

गृहस्थको चाहिए कि वह अभ्यागतकी ओर प्रसन्न नेत्रोंसे देखे, मन और वाणीकी प्रवृत्ति उसकी ओर लगावे और उठकर उसे आसन दे। स्वागतकी यही प्राचीन परम्परा है।" और—

"संसारमें वे पुरुष धन्य हैं, विवेकी हैं और प्रशंसनीय हैं, जिनके घर मित्रजन किसी-न-किसी कार्यवश निरन्तर आते रहते हैं।"

यह सुनकर संज्वलन कहने लगा—मित्र, मैंने तो आपके हितकी बात बतायी थी। आपने उसे द्वेष-गर्भित समझ लिया। अस्तु, मैं अभी स्वामीसे पूछकर आता हूँ। नीतिकारोंका कथन है—

"पृथ्वीका, समुद्रका और पहाड़का तो अन्त मिल सकता है; पर राजाके चित्तका पता कोई कभी भी नहीं जान सका है।"

राग-द्वेष कहने लगे—अच्छी बात है, मित्र, आप स्वामीके पास जाइए। पर यह तो बतलाइए, आप हमारी बातको अनुचित तो नहीं मान गये? यदि यह बात हो तो हमें क्षमा कर दीजिए।

राग-द्वेषकी बात सुनकर संज्वलन कहने लगा—मित्र, आपने तो यह गृहस्थधर्म की व्याख्या भर की है। इसमें बुराईकी क्या बात?

* १० एवमुक्त्वा संज्वलनो जिनपार्श्वे गत्वेदमवादीत्–देव देव, मकरध्वजस्य दूतयुगलमागतमस्ति, तद्यदि

देवादेशो भवति तदभ्यन्तरमानेष्यामि । एवं तद्वचनं श्रुत्वा परमेश्वरेणोच्चलितकरेण 'आगन्तुं देहि' इत्युक्तम् ।

एवं जिनवचनमाकर्ण्य सज्वलनो यावद्गच्छति तावत् सम्यक्त्वेनोक्तम्—अरे संज्वलन, किमेवं चिकीर्षसि ? यत्र निर्वेगोपशमादयो वीरास्तिष्ठन्ति तत्र रागद्वेषयोर्न कुशलम् । स ब्रूते—अहो, भवत्वेवम् परमनयोर्लोकत्रयविदितबलप्रसिद्धिः। सद्वेगौ केवलं मूलकारणभूतौ । तत्र किं कुशलाकुशलम् ?

एवं द्वयोर्वचनमाकर्ण्य परमेश्वरः प्रोवाच—अहो परस्परं किमनेन विवादेन ? यतो मया प्रभाते ससैन्यमदनो बन्धनीयोऽस्ति । तद्दूतयुगलस्याभ्यन्तरे प्रवेशो दीयते(येत) किं बहु विस्तरेण ? तच्छ्रुत्वा संज्वलन उभावभ्यन्तरं प्रवेश्य जिनसकाशमानीतवान् । अथ जिनेन्द्रं पीठत्रयाधिष्ठितं शुभ्रातपत्रत्रयोपशोभितं चतुःषष्ठिचामरवीज्यमानं भामण्डलतेजसोपशोभितं प्राप्तानन्तचतुष्टयं कल्याणातिशयोपेतं दृष्ट्वा नमश्चक्रतुः । तयोर्मध्ये एकेन नमस्कारः कृतः ।

अथ तौ समीपमुपविश्य प्रोचतुः—भो स्वामिन्, अस्मत्स्वाम्यादेशः श्रूयताम् । यान्यस्माकं त्रिभुवनसाराण्यनर्घाणि रत्नानि त्वयाऽऽनीतानि तानि सर्वाणि दातव्यानि । अन्यच्च, यदि त्वं सिद्ध्यङ्गनापरिणयनं करोषि तत्रो त्रैलोक्यमल्लस्य आज्ञास्ति ? अन्यच्च, हे देव, यदि त्वं सुखमिच्छसि तर्हि कामं सेवित्वा सुखेन तिष्ठ । यतस्तस्य प्रसादात् कस्यचिद्वस्तुनोऽप्राप्तिर्नास्ति । उक्तं च—

"कर्पूरकुङ्कुमागुरुमृगमदहरिचन्दनादिवस्तूनि ।
मदनो यदा प्रसन्नो भवन्ति सौख्यान्यनेकानि ।।४५।।"

तथा च–

"धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ।
सदा मत्ताश्च मातङ्गाः प्रसन्नो मदनो यदा ॥४६॥"

तज्जयाऽवश्यं तस्य सेवा क्रियते (येन) । तथा च–

सेवा यस्य कृता सुरासुरगणैश्चन्द्रार्कयक्षादिकैः
गन्धर्वादिपिशाचराक्षसगणैर्विद्याधरैः किन्नरैः ।
पाताले धरणीधरप्रभृतिभिः स्वर्गे सुरेन्द्रादिकैः
ब्रह्मा (वेधो-) विष्णुमहेश्वरैरपि तथा चान्यैर्नरेन्द्रैरपि ॥३॥

तदवश्यं तेन मकरध्वजेन सह मैत्री करणीया, न च शत्रुत्वम् यतोऽयं मदनो महाबलवान् तत्कदाचिदवसरे क्रुद्धो भविष्यति, तदा किंचिन्न गणयिष्यति । अन्यच्च–

पातालमाविशसि यासि सुरेन्द्रलोक–
मारोहसि क्षितिधराधिपतिं सुमेरुम् ।
मन्त्रौषधैः प्रहरणैश्च करोषि रक्षां
मारस्तथाऽपि नियतं प्रहरिष्यति त्वाम् ॥४॥

तथा च–

एष एव स्मरो वीरः स चैकोऽचिन्त्य विक्रमः ।
अवज्ञयैव येनेदं पादपीठीकृतं जगत् ॥५॥
एकाक्यपि जयत्येव जीवलोकं चराचरम् ।
मनोभूर्भङ्गमानीय स्वशक्त्याऽव्याहतक्रमः ॥६॥

तथा च–

पीडयत्येव निःशङ्को मनोभूर्भुवनत्रयम् ।
प्रतीकारशतेनापि यस्य भङ्गो न भूतले ॥७॥

अन्यच्च–

कामशूलमिदं लोके स्मरसंज्ञं महाविषम् ।
स्यात्पूर्वं सप्रतीकारं निष्प्रतीकारमुत्तरम् ॥८॥

न पिशाचोरगा रोगा न दैत्यग्रहराक्षसाः ।
पीडयन्ति तथा लोकं यथाऽयं मदनज्वरः ॥९॥

न हि क्षणमपि स्वस्थं चेतः स्वप्नेऽपि जायते ।
मनोभवशरव्रातैर्भिद्यमानं शरीरिणाम् ॥१०॥

जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति ।
लोकः कामानलज्वालाकलापकवलीकृतः ॥११॥

अन्यच्च–

सिक्तोऽप्यम्बुधरव्रातैः प्लावितोऽप्यम्बुराशिभिः ।
न हि त्यजति सन्तापं कामवह्निप्रदीपितः ॥१२॥

तथा च–

तावद्धत्ते प्रतिष्ठां परिहरति मनश्चापलं चैव ताव–
त्तावत्सिद्धान्तसूत्रं स्फुरति हृदि परं विश्वतत्त्वैकदीपम् ।
क्षीराकूपारवेलावलयविलसितैर्मानिनीनां कटाक्षै–
र्यावन्नो हन्यमानं कलयति हृदयं दीर्घदोलायितानि ॥१३॥

यासां सीमन्तिनीनां कुरबकतिलकाशोकमाकन्दवृक्षाः
प्राप्योच्चैर्विक्रियन्ते ललितभुजलताऽऽलिङ्गनादीन्
विलासान् ।
तासां पूर्णेन्दुगौरं मुखकमलमलं वीक्ष्य लीलालसाढ्यं–
को योगी यस्तदानीं कलयति कुशलो मानसं निर्विकारम्
॥१४॥

तथा च—

इह हि वदनकंजं हावभावालसाढ्यं
मृगमदललिताङ्कं विस्फुरद्भ्रूविलासम् ।
क्षणमपि रमणीनां लोचनैर्लक्ष(क्ष्य)माणं
जनयति हृदि कम्पं धैर्यनाशंच पुंसाम् ।।१५।।

तत्किमनेन बहुप्रोक्तेन यदि त्वमात्मनः सुखमिच्छसि तत्तस्य मकरध्वजस्य सेवां कुरु । किमेतत् सिद्धयङ्गनामात्रं परिणेष्यसि ?

* १० इस प्रकार कहकर संज्वलन जिनराजके पास गया और कहने लगा—देव, देव, कामके दो दूत आये हुये हैं यदि आप आज्ञा दें तो उन्हें अन्दर ले आऊँ।

संज्वलनकी बात सुनकर परमेश्वरने हाथके संकेतसे उससे कहा कि आने दो।

जिनराजकी बात सुनकर संज्वलन राग-द्वेषको बुलाने जा ही रहा था कि इतनेमें सम्यक्त्वने कहा—अरे संज्वलन, यह क्या कर रहे हो ? जहाँ निर्वेद और उपशम आदि वीर योद्धा मौजूद हैं वहाँ राग-द्वेषकी किस प्रकार कुशल रह सकती है ?

संज्वलनने कहा—जो हो, परन्तु राग-द्वेषका बल भी तो तीनों लोकमें प्रसिद्ध है। फिर अभी तो ये केवल दूत-कार्य ही सम्पादित करने आये हैं। इसलिए इस समय इनकी कुशलता और अकुशलताका तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

संज्वलन और सम्यक्त्वकी इस चर्चाको सुनकर परमेश्वर जिनराज कहने लगे—अरे, आप लोग आपसमें क्यों विवाद कर रहे हैं ? प्रातः मुझे स्वयं सैन्यसहित मकरध्वजको पराजित करना है। इसलिए अधिक क्या, दोनों दूतों को भीतर आने दीजिए ।

जिनराजकी आज्ञा पाते ही संज्वलन राग-द्वेषको जिनराज के पास ले आया।

वहाँ आकर राग-द्वेषने देखा कि जिनराज सिंहासनपर विराजमान हैं, उनके सिरपर तीन शुभ्र छत्र लटक रहे हैं, चौंसठ चामर ढुर रहे हैं, भामण्डलके प्रभा-पुंजसे वह दमक रहे हैं, अनन्त चतुष्टयसे सुशोभित हैं और कल्याणातिशयोंसे सुन्दर हैं। जिनराजका इस प्रकारका वैभव देखकर राग-द्वेष एकदम चकित हो गये। उन्होंने जिनराजको प्रणाम किया और उनके पास बैठ गये।

तदुपरान्त वे जिनराजसे कहने लगे—स्वामिन् हमारे स्वामीने जो आदेश दिया है उसे सुन लीजिए—

उनका आदेश है कि आप जो त्रिभुवनके सारभूत अमूल्य रत्न हमारे स्वामीके ले आये हैं उन्हें वापिस कर दें। दूसरे, आप जो सिद्धि-अंगनाके साथ विवाह कर रहे हैं इसमें त्रिलोकीनाथ कामकी आज्ञा आपको नहीं मिली है। तीसरे, यदि आप सुखी रहना चाहते हो तो कामकी सेवा करो और सुखसे रहो। क्योंकि कामदेवके प्रसन्न रहनेपर संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। कहा भी है:-

"यदि कामदेव प्रसन्न हैं तो सहज ही कपूर, कुंकुम, अगरु, कस्तूरी और हरिचन्दन आदि अनेक वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं। और अनेक प्रकारके सुख भी।" तथा च—

"कामके प्रसन्न होनेपर धवल छत्र, मनोरम अश्व और मदोन्मत्त हाथी–सब कुछ प्राप्त रहते हैं।"

राग-द्वेष कहने लगे—इसलिए जिनराज, आपको उस काम-देवकी सेवा अवश्य करनी चाहिए, जिसकी सुरासुर-गण, चन्द्र, सूर्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, विद्याधर और किन्नर सेवा किया करते हैं, जो पाताल लोकमें शेषनागके द्वारा पूजित होता है; स्वर्गमें देव

और इन्द्र जिसकी पूजा करते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर और अन्य राजा आदि भी जिसकी सम्माननामें व्यस्त रहते हैं।

इतना ही नहीं, आप उसके साथ मित्रता स्थापित कर लें। उसके साथ शत्रुता का भाव तो आपको कदापि न रखना चाहिए। कारण, काम महान् बलवान् है। कदाचित् वह तुमसे रुष्ट हो गया तो पता नहीं क्या कर डालेगा ?

'और कामके क्रुद्ध हो जानेपर आप पातालमें प्रवेश करें, सुरेन्द्रलोकमें जावें, नगाधिपति सुमेरुपर चढ़ें और मन्त्र, औषधि तथा आयुधोंसे भी अपनी रक्षा करें, पर आप अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे और काम निश्चयसे तुम्हारे ऊपर प्रहार करेगा।" और—

"यह काम ही एक इस प्रकारका वीर और अचिन्त्य पराक्रमी है, जिसने जगत्को अनायास ही अपने पैरोंसे रौंद डाला है। तथा इसने बिना किसी बाधाके अकेले ही अपनी शक्तिसे चराचर संसार-को छिन्न करके अपने अधीन कर लिया है।" अथ च—

"केवल यह एक काम ही है जो निःशङ्क होकर तीनों लोकको पीड़ित करता है और भूलोकमें सैकड़ों उपाय करनेपर भी जिसका कोई विनाश नहीं कर सका है।" तथा—

"एक आलोचककी दृष्टिमें तो यह काम कालकूटसे भी अधिक महत् विष है। उनका कहना है कि इन दोनोंमेंसे कालकूटका तो प्रतीकार भी हो सकता है लेकिन द्वितीय काम-विषका कोई प्रतीकार नहीं है।

पिशाच, सर्प, रोग, दैत्य, ग्रह और राक्षस संसारमें इतनी पीड़ा नहीं पहुँचाते, जितनी यह मदनज्वर पहुँचाता है।

जिन देहधारियोंका मन कामके बाणोंसे भिदा हुआ है वह स्वप्नमें भी स्वस्थ नहीं रह सकता।

कामाग्निकी ज्वालाओंमें जलता हुआ संसार जानता हुआ भी नहीं जानता है और देखता हुआ भी नहीं देखता है।" और—

"कामाग्निसे जलते हुएके संतापको मेघोंकी वर्षा और समुद्रका प्लावन भी शान्त नहीं कर सकता।" तथा—

"मनुष्यकी तभी तक प्रतिष्ठा रहती है, तभीतक मन स्थिर रहता है, और तभीतक हृदयमें विश्वतत्त्व-दीपक सिद्धान्त-सूत्र स्फुरित रहता है जबतक उसका हृदय क्षीर-सागरके तटवर्ती तरङ्गविलासोंके सदृश स्त्रियोंके कटाक्षोंसे आहत होकर आन्दोलित नहीं होता है।

जिनराज, ये वे स्त्रियां है जिनके सुन्दर भुज-लताओंके आलिङ्गन-विलासको प्राप्त करके कुरबक, तिलक, अशोक और माकन्द-वृक्ष भी प्रचुर रूपसे विकारी हो जाते हैं। तब ऐसा कौन कुशल योगी है जो इनके पूर्ण चन्द्रके समान निर्मल और सलिल मुख-कमलको देखकर अपने मनको निर्विकारी रख सके।" तथा—

"हाव-भावोंसे पूर्ण, भालकी कस्तूरीसे अलङ्कृत, भ्रुकुटि-विलाससे सुशोभित तथा लोल लोचनोंसे विराजित रमणियोंके मुखका क्षण-मात्र दर्शनतक पुरुषोंके हृदयमें कम्प उत्पन्न करता है और उन्हें अधीर बना देता है।"

राग-द्वेष इस प्रकार अन्तमें कहने लगे :—जिनराज हम अधिक क्या कहें? यदि आप आत्मतोष चाहते हैं तो महाराज मकर-ध्वजकी सेवा कीजिए। सिद्धि-अंगनाको बिवाहनेके चक्करमें क्यों पड़े हैं?

*** ११ ततो जिननाथः प्रोवाच—अरे, अज्ञानिनौ, किं जल्पथः? तस्याधमस्य सेवाऽस्माकं युक्ता न भवति।**

उक्तं च—

"वनेऽपि सिंहा मृगमांसभोजिनो बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समाचरन्ति ॥४७॥"

अन्यच्च–

"ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलम् ।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥४८॥"

तथा च–

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।
ययोरेव गुणैः साम्यं तयोर्मैत्री भवेद् ध्रुवम् ॥१६॥

तत्किमेवं जल्पथः ? हरिहरब्रह्मादीनां कातराणां जयनं कथयन्तौ न लज्जेथे ? तदेवं शूरधर्मो न भवति। अथवा शूरतरा ये भवन्ति ते भटनटभण्डवैतालिकवत् याचनां न कुर्वन्ति । तदसौ भवतो युवाभ्यामेवं शूरत्वेन वर्णितस्तत्कथमसौ रत्नानि रङ्कुवद्याचते तदनेन प्रकारेण रत्नानि न दास्यामि । तथा च–

यो मां जयति सङ्ग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स रत्नाधिपतिर्भवेत् ॥१७॥

अन्यच्च, ये पूर्वं भोगा भवद्भ्यां कथितास्ते सर्वे मया आदावेव लक्षिताः सन्ति, न च शाश्वता भवन्ति ते ।

तथा च–

अर्थाः पादरजःसमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनं
मानुष्यं जलबिन्दुलोलचपलं फेनोपमं जीवितम् ।
भोगाः स्वप्नसमास्तृणाग्निसदृशं पुत्रेष्टभार्यादिकं
सर्वं च क्षणिकं न शाश्वतमहो त्यक्तं च तस्मान्मया ।१८।

अन्यच्च–

वपुर्विद्धि रुजाक्रान्तं जराक्रान्तञ्च यौवनम् ।
ऐश्वर्यंच विनाशान्तं मरणान्तं च जीवितम् ॥१६॥

स्त्री या सा नरकद्वारं दुःखानां खानिरेव च ।
पापबीजं कलेर्मूलं कथमालिङ्गनादिकम् ॥२०॥

वरमालिङ्गिता क्रुद्धा चलल्लोलाऽत्र सर्पिणी ।
न पुनः कौतुकेनापि नारी नरकपद्धतिः ॥२१॥

तथा च–

किम्पाकफलसम्भोगसन्निभं विद्धि मैथुनम् ।
आपातमात्ररम्यं स्याद् विपाकेऽत्यन्तभीतिदम् ॥२२॥

अनन्तदुःखसन्ताननिदानं तद्धि मैथुनम् ।
तत्कथं सेवनीयं स्यान्महानरककारकम् ॥२३॥

स्वतानुरक्तं किल कुक्कुराधमैः
प्रपीयते यद्वदिहास्थिचर्वणात् ।
तथा विटैर्विद्धि वपुर्विडम्बनं–
निषेव्यते मैथुनसम्भवं सुखम् ॥२४॥

तत्किमनेन भूरिप्रोक्तेन । अवश्यमहं सिद्ध्यङ्गनापरिणयनं करिष्यामि, येन शाश्वतसुखप्राप्तिर्भविष्यति । अन्यच्च-

समोहं सशरं कामं ससैन्यं कथमप्यहम् ।
प्राप्नोमि यदि सङ्ग्रामे वधिष्यामि न संशयः ॥२५॥

* ११ जिनराज राग-द्वेषकी बात सुनकर कहने लगे:– अरे, तुम लोग कितने अज्ञानी हो जो इस प्रकारकी बात कह रहे हो ? क्या हम उस अधम कामकी सेवा कर सकते हैं ? कहा भी है।—

"जिस तरह वनमें मृग-मांसको खानेवाले सिंह भूखे होने पर भी तृण नहीं खाते हैं उसी प्रकार आपत्तियोंके आनेपर भी कुलीन पुरुष नीच-कर्म नहीं करते हैं।" और

"जिनका शील और कुल समान कोटिका है उन्हींमें मित्रता और विवाह होता है। लघु और महान्‌में नहीं।" तथा—

"जिनका द्रव्य, शास्त्राभ्यास और गुण एक-से होते हैं, उनमें ही निश्चय रूपसे मित्रता हो सकती है।"

जिनराज कहते गये—और जो तुमने हरि, हर, ब्रह्मा आदिकी कामदेवके द्वारा पराजित होनेकी बात बतलायी है और जो तुम यह कह रहे हो कि कामदेव मुझे भी पराजित कर डालेगा सो तुम्हें अपनी इस बातपर लज्जित होना चाहिए। उन्हें जीतनेमें कामकी कोई बहादुरी नहीं है। फिर, जो बहादुर होते हैं वे भट, नट, भांड और स्तुति-पाठकोंके समान याचना नहीं करते हैं। जब तुम कामकी शूर-वीरताका इस प्रकार वर्णन करते हो तो वह क्यों रङ्कके समान रत्नोंकी मांग करता है? इस प्रकारकी याचनासे उसे रत्न नहीं मिल सकते।

तुम यह निश्चय कर लो, जो संग्राममें मेरा सत्व चूर करके मुझे पराजित करेगा या संसारमें मेरा समानधर्मा है, वही रत्नोंका स्वामी हो सकता है।

अथ च, जिन भोगोंकी ओर तुमने मुझे ललचाना चाहा है उनकी मैंने प्रारम्भमें ही परीक्षा कर ली है। और वे शाश्वतिक भी नहीं हैं।

"मुझे धन पैरकी धूलिके समान मालूम हुआ। यौवन पर्वतसे गिरनेवाली नदीके वेग-जैसा प्रतीत हुआ। मानुष्य जलबिन्दुके समान चंचल और लोल मालूम हुआ तथा जीवन फेन-जैसा अस्थिर। भोग

स्वप्नके समान निःसार और पुत्र एवं प्रिय स्त्री आदि तृणाग्निके सदृश क्षणनश्वर मालूम हुए। इस प्रकार मैंने सबको क्षणनश्वर और अशाश्वत समझ कर छोड़ दिया है।" तथा—

"शरीर रोगसे आक्रान्त है और यौवन जरासे। ऐश्वर्यके साथ विनाश लगा है और जीवनके साथ मरण।

जब स्त्री नरकका द्वार है, दुःखोंकी खानि है, पापोंका बीज है, कलिका मूल है, फिर उससे आलिङ्गन आदि कैसे संभव है?

चपल जिह्वावाली क्रुद्ध सर्पिणीका आलिंगन उचित है। लेकिन नरक-पद्धति नारीका कौतुक-वश भी आलिङ्गन करना उचित नहीं है।" और—

"मैथुन धतूराके फलके समान प्रथमतः रम्य और परिणाममें अत्यन्त भयंकर है। अनन्त दुःख परम्पराका मूल है और नरकका महान् कारण है। कोई भला आदमी इसका सेवन कैसे कर सकता है?

जिस प्रकार कुत्ता हड्डी चबाकर अपने तालुका रक्त पीते हैं, उसी प्रकार ढोंगी विट भी मैथुनके सुखका अनुभव करते हैं।"

इसलिए इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी जरूरत नहीं है। मैं अवश्य ही सिद्धि-अंगनाके साथ विवाह करूँगा और इस प्रकार ही मुझे शाश्वत सुख मिल सकेगा। और:—

मुझे समराङ्गणमें यदि मोह, बाण और सैन्यसहित काम मिल गया तो मैं उसे निश्चयसे निर्वीर्य कर दूँगा।

*** १२ एवं जिनवचनमाकर्ण्य रागद्वेषौ कोपं गत्वा प्रोचतुः—भो जिनेश्वर, किमेतन्मुखचापल्यादप्रस्तुतं वदसि? सतां स्वयमेव स्वप्रशंसमाजल्पनं न युक्तम्। तावत्त्वं शाश्वतं**

सुखमिच्छसि यावन्मदनबाणभिद्यमानो न भवसि । उक्तं च यतः—

"प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसम्पदस्तावत् ।
न पतन्ति बाणवर्षा यावच्छ्रीकामभूपस्य ॥७६॥

एवं दूतवचनमाकर्ण्य संयमेनोत्थाय द्वयोरर्द्धचन्द्रं दत्त्वा द्वाराद्बहिर्निष्कासितौ । इति श्रीठक्कुरमाइन्ददेवस्तुत जिन(नाग)देवविरचिते स्मरपराजये सुसंस्कृतबन्धे

दूतविधिसंवादो नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

* १२ जिनराजकी यह बात सुनकर राग द्वेष बड़े क्रुद्ध हुए और कहने लगे—हे जिनराज, इस प्रकार मुँह चला कर क्या बकवाद कर रहे हो ? महापुरुष कभी भी आत्म-प्रशंसा नहीं करते हैं। फिर जबतक काम तुम्हें अपने बाणोंसे नहीं भेदता है, तभीतक तुम शाश्वतिक सुखकी कल्पनामें तन्मय हो रहे हो। कहा भी है:—

"विद्वानोंके मनमें तभीतक विवेक जागृत रहता है और शास्त्रज्ञान भी तभीतक चमकता है, जबतक उनके ऊपर कामदेवकी बाण-वर्षा नहीं होती।"

दूत इस प्रकार कहकर चुप ही हुए थे कि संयम उठा और दोनोंको एक एक चाँटा जड़कर दरवाजेसे बाहर कर दिया।

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन(नाग) देव-विरचित स्मर-पराजयमें दूतविधि-संवाद नामक द्वितीय परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।

तृतीयः परिच्छेदः

* १ अथ तौ दूतौ कुद्ध्यमानौ (क्रुद्ध्यन्तौ) कामपार्श्वं समागत्य प्रणम्योपविष्टौ । ततः कामः प्राह–अहो भवद्भ्यां तत्र गत्वा जिनं प्रति किमभिहितं, किमुत्तरं दत्तं (दे)तेन जिनेन, कथम्भूता तस्य जिनस्य युद्धसामग्री ? एवं तेन कामेन पृष्टौ तौ दूतावुक्तवन्तौ–

अहो देव, किमेतद्वार्तां पृच्छसि ? स जिनेन्द्रोऽगम्योऽलक्ष्यो महाबलवान् । न किञ्चिन्मन्यते । आवाभ्यां दण्डप्रभेदसामदामप्रकारैः शिक्षितः; परं निजबलोद्रेकात् किंचिन्न गणयति । अन्यच्च, तेनेदमभिहितम्–अरे, किमेतज्जल्पथः ? तस्याधमस्य सेवामहं न करोमि । यतो मया प्रातः ससैन्यमदनो बन्धनीयोऽस्ति ।

तच्छ्रुत्वा शल्यवीरोऽब्रवीत्–अहो, किमेतदसत्यं वदथः ? यद्येवं जिनेश्वरेणोक्तं तदस्मदीयसैन्यबाह्यौ भवन्तौ ? यतो युवयोः किंचित् पराभवमात्रं न दृश्यते ?

अथ तावूचतुः–भो शल्यवीर, पराभवमात्रस्याऽसम्भवार्थं कारणमेकमास्ते । उन्नतचेतसो ये केचन भवन्ति ते स्वल्पाश्च घ्नन्ति । उक्तं च यतः–

"तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः ।

समुच्छ्रितानेव तरून् प्रबाधते महान् महद्भिश्च करोति विग्रहम् ॥१॥"

तथा च–

"गण्डस्थलेषु मदवारिषु लौल्यलुब्ध–
मत्तभ्रमद्भ्रमरपादतलाहतोऽपि ।
कोपं न गच्छति नितान्तबलोऽपि नागः
स्वल्पे बले न बलवान् परिकोपमेति ॥२॥"

[तृतीय परिच्छेद]

* १ संयमसे अपमानित होनेपर राग और द्वेष बड़े क्रुद्ध हुए। वे वहाँसे चलकर सीधे कामदेवके पास पहुँचे और उसे प्रणाम करके बैठ गये।

राग-द्वेषके पहुँचते ही कामने पूछा—हाँ भाई, तुमने जिनराज-के पास जाकर क्या कहा, जिनराजने क्या उत्तर दिया और उसकी युद्ध-सामग्री किस प्रकार की है ?

कामदेवके इस प्रकार पूछनेपर राग-द्वेष कहने लगे:—राजन्, यह बात हमसे न पूछिए। जिनराज अत्यन्त अगम्य, अलक्ष्य और महान् बलवान् है। वह आपको कुछ नहीं समझता है। हम लोगोंने उसे साम, दाम दण्ड और भेद—सब तरहसे समझाया, पर अपनी शक्तिके अभिमानमें उसे किसीकी परवाह नहीं है। इतना ही नहीं, जिनराजने यह भी कहा है कि—'मैं उस अधमकी सेवा नहीं कर सकता और प्रातःकाल मुझे ससैन्य कामको पराजित करना है।'

शल्यवीरने कहा—राग-द्वेष, आप लोग यह क्या अप्रिय बात कह रहे हैं ? क्या आप हमारी सेनाके अन्तर्गत नहीं थे जो आपने इस प्रकार पराभवका घूँट पी लिया ?

राग-द्वेष कहने लगे—महाराज मल्यवीर, पराभव सहन करनेका एक कारण है । वह यह कि जो महामना होते हैं वे अपनेसे छोटोंको सताते नहीं हैं । कहा भी है:—

'वायु सब प्रकारसे प्रणत और मृदुल तृणोंको नहीं उखाड़ती, बल्कि वह उन्नत वृक्षोंको ही बाधा पहुँचाती है। ठीक है, महान् महान् पुरुषोंके साथ ही विग्रह करते हैं ।" तथा—

"शक्तिशाली हाथी अपने मद-जलसे परिपूर्ण गंडस्थलपर सुगन्ध-लोलुप भौंरोंके पाद-प्रहारसे पीड़ित होनेपर भी क्रोध नहीं करता है । ठीक है, बलवान् स्वल्पबलशाली पर कदापि क्रोध नहीं करते ।"

❀ २ एव श्रुत्वा मदनो घृतसिक्तानलवत् कोपं गत्वा अन्यायकाहलिकं प्रत्यब्रवीत्—रे अन्यायकाहलिक, शीघ्रं काहलया निनादं कुरु यथा सैन्यसमूहो भवति । एतदाकर्ण्य तेनानीसिकाहला गम्भीररवेण नादिता ।

अथ तच्छ्रवणाज्जिनेन्द्रोपरि बलानि सन्नद्धानि जज्ञिरे । तद्यथा—

प्रापुः षट्त्रिगुणा महाक्षरसरा दोषास्त्रयो गारवा
आजग्मुर्व्यसनाभिधानसुभटाः पंचेन्द्रियाख्यास्ततः ।
वीरा वैरकुलांतका वरभटा दण्डास्त्रयश्चागताः
प्राप्ताः शल्यसमास्त्रयोऽतुलबलाः शल्याभिधाना नृपाः ॥१॥

आयुष्कर्मनराधिपाश्च चतुराः प्राप्तास्तु पंचाश्रवा
रागद्वेषभटौ ततोऽनु(नि)मिलतुर्दर्पोद्धतौ सिंहवत् ।
सम्प्राप्तावतिगर्वितौ रणदले गोत्राभिधानौ नृपा-
वज्ञानाख्यनृपास्त्रयोऽथ मिलिताः प्राप्तस्ततश्चानयः।२।

प्राप्तौ क्रूरयमोपमौ बलयुतौ द्वौ वेदनीयाभिधौ
पुण्याद्यक्षितिपालकौ च मिलितौ प्राप्तस्तथा संयमः ।
प्रापुर्निर्दलिताखिलारिपृतनाः पञ्चान्तराया नृपाः
सम्प्राप्तौ तदनन्तरं दृढतरावाशाभिधानौ नृपौ ॥३॥

पञ्च नरेन्द्रा मिलिता ज्ञानावरणीयनामानः ।
दुष्परिणामौ मिलितौ दर्शनमोहोऽतिदुर्जयः प्राप्तः ॥४॥

त्रिनवतिनरनाथा नामकर्माभिधानाः
स्फुरिततरगणा वै भासमानाः प्रपन्नाः ॥
अथ नृपतिशतेन व्रतसार्धेन युक्ता
भुजग इव सरोषा अष्ट कर्मप्रधानाः ॥५॥

भूपाला नव सम्प्राप्ता दर्शनावरणीयकाः ।
शोभते कामसैन्यं तैर्यथा मेरुर्नवग्रहैः ॥६॥

तथा च—

प्राप्तश्च षोडशकषायनृपैः प्रयुक्त—
श्चान्यैर्नृपैश्च नवभिर्नवनोकषायैः ।
मिथ्यात्वभूमिपतिभिस्त्रिभिरावृतोऽन्यै—
र्यो दुर्जयोऽतिबलवानपि दुर्द्धरो यः ॥७॥

स्वर्गो जितः शतमखः सगणोऽपि येन
येनेशभानुशशिकृष्णपितामहाद्याः ।
यस्माद्बिभेति बलवान् धरणीधरो यो
सो(ऽसौ)मोहमल्ल इति भाति यथा कृतान्तः ॥८॥

एवं तमागच्छन्तं दृष्ट्वा सम्मुखं गत्वा मकरध्वजेन परमानन्देन तस्य मोहमल्लस्य पट्टबन्धनं शेषाभरणं च कृत्वा वचनमेतदुक्तम्—भो मोहमल्ल, अधुना सर्वमेतद्राज्यं त्वया

रक्षणीयम् । यतस्त्वमेव सैन्याधिपतिः । तव लीलां यः सङ्ग्रामे प्राप्नोति एवं विधो न कोऽप्यस्ति । उक्तं च यतः—

"यद्वच्चन्द्रमसा विनाऽपि रजनी यद्वत्सरोजैः सरित्
गन्धेनैव विना न भाति कुसुमं दन्तीव दन्तैर्विना ।
यद्वद् भाति सभा न पण्डितजनैर्यद्वन्मयूखै रवि-
स्तद्वन्मोह, विना त्वया मम दलं नो भाति वीरश्रिया
॥३॥"

तदवश्यमिहाऽहमिदानीं जिनेन्द्रं जेष्यामि । एवं याव-त्तेनोक्तं तावत्तस्मिन्नवसरे निजमदभरान्धानां मदकुञ्जराणा-मष्टानां समरभूमौ घटाः सम्प्राप्ताः । तथाऽतिवेग उन्नतो दुर्द्धरश्चपलः सबलो मनस्तुरङ्गमसमूहः सम्प्राप्तः । एवमादि प्रभूतक्षत्रियभटसमूहैः समावृतं सैन्यमतिशोभते । तथा च—

दुष्टलेश्याध्वजापङ्क्तिनिचितमभिरम्यं कुकथात्युच्छ्रतय-ष्टिकाभिरारक्ष्यगमनाम्बोलनाभिराह्लादजनकं जातिजरामर-णस्तम्भैरुपशोभितं तथा पंचकुदर्शनपंचशब्दैर्बधिरीभूतं दशका-मावस्थातपत्राच्छादितान्धकारीभूतम् । एवंविधचतुरङ्गसैन्य-समन्वितो मनोगजमारुह्य सङ्ग्रामार्थं निर्गन्तुमिच्छति याव-ज्जिनेन्द्रोपरि तावत्तस्मिन्नवसरे—

प्राप्तो मूढनृपैस्त्रय(त्रिभि)श्च सहितं(तः) शङ्कादि-
वीरैस्त्रिभि-
र्युक्ता येन करी धृता करतले संसारदण्डस्तथा ।
यः प्राप्नोति रणे सदा जयरवं लोकत्रयं कम्पितं
चैतद्यस्य भयात्, स घातिबलवान् मिथ्यात्वनामा नृपः
॥४॥

२ राग-द्वेषकी बात सुनकर कामदेव इस प्रकार क्रोधसे भड़क उठा जैसे अग्निपर घी डालनेसे वह भड़क उठती है। उसने भेरी बजानेवाले अन्यायको बुलाया और कहा—अरे अन्याय, तुम शीघ्र ही अपनी भेरी बजाओ, जिससे समस्त सेना एकत्रित हो जाय।

महाराज मकरध्वजकी बात सुनकर अन्यायने बड़े जोरसे अपनी भेरी बजायी। और भेरीका शब्द सुनते ही समस्त सेना जिनेन्द्रके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए तैयार हो गयी।

कामदेवकी सेना इस प्रकारसे तैयार हुई :—

अठारह दोष, तीन गारव, सात व्यसन, पाँच इन्द्रियाँ, वैरि-कुलके लिए यमस्वरूप तीन दण्ड-नामक सुभट और तीन शल्यनामक राजा उपस्थित हो गये।

चार आयुष्कर्म तथा पाँच आस्रव कर्म नामके राजा आ पहुँचे। मदोन्मत्त सिंहकी तरह राग-द्वेष नामके सुभट भी तैयार हो गये। गोत्र नामके अत्यन्त मानी दो राजा, एक अज्ञान नरेश और एक अनय महाराज भी सन्नद्ध हो गये।

क्रूर यमके समान दो वेदनीय नामके प्रबल राजा और पुण्य-पापके साथ असंयम नरेश भी तैयार हो गया। समस्तशत्रु-संहारक पाँच अन्तराय और दो आशा-नरेश भी आ पहुँचे।

ज्ञानावरणनामक पाँच राजा तथा शुभ-अशुभ नृपतिके साथ दुर्जय दर्शनमोह भी तैयार होकर आ गया।

अपने अधीनस्थ भृत्योंके साथ नाम-कर्म नामके तिरानवे नरेश और सौ जुवारियोंके संघसहित प्रमुख आठ कर्म-नरेश भी रोषमें भरे आ पहुँचे।

दर्शनावरणीयरूपी नौ राजा भी उपस्थित हो गये। इन राजाओंसे कामकी सेना इस प्रकार सुन्दर मालूम हुई जैसे नवग्रहोंसे मेरु सुशोभित होता है। अथ च—

सोलह कषाय, नौ नोकषाय, और तीन मिथ्यात्वनामक राजाओंके परिवारके साथ दुर्जय और बलवान् मोह भी आ डटा। वह मोहमल्ल, जिसने सपरिकर इन्द्र, महादेव, सूर्य, चन्द्र, कृष्ण और ब्रह्माको पराजित किया और जिससे महान् हिमालय भी भीत रहता है, आते समय इस प्रकार मालूम हुआ जैसे साक्षात् यमराज आ रहा हो।

ज्यों ही महाराज कामदेवने मोहको सामने आते हुए देखा, उसने बड़े उल्लासके साथ मोहका पट्टबन्ध किया और अपने शेष सम्पूर्ण आभरण उसे दे डाले। इसके पश्चात् कामदेव उससे कहने लगा—हे मोहमल्ल, अब तुम्हें ही इस सम्पूर्ण राज्यकी रक्षा करनी है। क्योंकि सेनाधिपति तुम्हीं हो और इस संग्राममें ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारा सामना कर सके। वह कहता गया—

"मोह, जिस प्रकार चन्द्रके बिना रात्रि सुशोभित नहीं होती, कमलोंके बिना नदी सुशोभित नहीं होती, गन्धके बिना फूल सुन्दर नहीं होता, दांतोंके बिना हाथी सुशोभित नहीं होता, पण्डित-समूहके बिना सभा अलंकृत नहीं होती और किरणोंके बिना सूर्य सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार अद्भुत पराक्रमी तुम्हारे बिना हमारा सैन्य भी सुशोभित नहीं हो सकता है। इसलिए मुझे विश्वास है कि मैं अब जिनेन्द्रको जरूर ही जीत लूंगा।"

कामदेव और मोहकी इस प्रकारकी बात चल ही रही थी कि इतनेमें अपने मदके भारसे अन्धे आठ मदरूपी हाथियोंके समराङ्गणमें घण्टे बजने लगे और अत्यन्त वेगवान्, उन्नत, दुर्द्धर, चपल और सबल मनरूपी अश्वसमूह भी उपस्थित हो गया। इस तरह कामदेवके सैन्यमें अनेक क्षत्रिय सुभट-समूह सम्मिलित हो गये और इस कारण उसमें निराली शान आ गयी।

इस प्रकार यह सैन्य दुष्ट लेश्यारूपी ध्वज-वस्त्रोंसे सघन था। इन ध्वजाओंमें कुकथारूपी उन्नत दण्ड लगे हुए थे, जिनके कारण ये ध्वजाएं आकाशमें आन्दोलित होकर दर्शकोंके मनमें आह्लाद पैदा कर रही थीं। इतना ही नहीं, यह सैन्य जाति-जरा और मरणरूपी स्तम्भोंसे सुशोभित था, पाँच मिथ्यादर्शनरूपी पाँच प्रकारके शब्दोंसे जगत्को बहरा कर रहा था और दश कामावस्थारूपी छत्रोंके कारण इसमें सर्वत्र अन्धकार घनीभूत हो रहा था।

कामदेव इस प्रकारके चतुरंग-सेनाके साथ मनोगजपर सवार होकर जिनेन्द्रसे संग्राम करनेके लिए जानेवाला ही था कि इतनेमें तीन मूढ़ता और तीन शल्यादि वीर राजाओंके साथ संसार-दण्डको हाथमें लेकर अपने जयरवसे तीनों लोकको कँपाता हुआ बलवान् मिथ्यात्व नामका राजा आकर उपस्थित हो गया।

*** ३ ततो मिथ्यात्वनृपः प्रोवाच—भो भो त्रिवशांकुर-कन्दर्पपञ्चानन, कस्योपरि संचलितस्त्वम् ? ममादेशं देहि। किमनेन सैन्यमेलनेन ? केवलोऽहं जिनेन्द्रं जेष्यामि।**

ततो मोहः प्राह—अरे मिथ्यात्व, किमेतंजल्पसि ? एवं-विधो बलवान् कोऽस्ति यः सङ्ग्रामे जिनसम्मुखो भवति। तत्प्रभाते त्वं शूरत्वं ज्ञास्यस्यहं यत्र दलनाथः सम्यक्त्ववीरः प्राप्स्यति। उक्तं च यतः—

"तावद्गर्जन्ति मण्डूकाः कूपमाश्रित्य निर्भयाः।
यावन्नाशीविषो घोरः फटाटोपो न दृश्यते ॥४॥
तावद्गर्जन्ति मातङ्गा भिन्ननीलाद्रिसन्निभाः।
यावच्छृण्वन्ति नो कर्णैः क्रुध्यत्पञ्चाननस्वरम् ॥५॥
तावद्विषप्रभा घोरा यावन्नो गरुडागमः।
तावत्तमःप्रभा लोके, यावन्नोदेति भास्करः ॥६॥"

अन्यच्च—

"खद्योतानां प्रभा तावद् यावन्नो रविरश्मय: ।
द्विजिह्वानां बलं तावद् यावन्नो विनतासुत: ।।७।।"

❀ ३ मिथ्यात्वने आते ही कामदेवसे कहा—हे देवतारूपी मृगोंके लिए सिंह-सदृश देव, आप इतनी बड़ी सेनाके साथ क्यों प्रस्थान कर रहे हैं ? मुझे आज्ञा दीजिए । मैं अकेला ही जिनेन्द्रको पराजित करके आता हूँ ।

इस बीचमें मोह कहने लगा—अरे मिथ्यात्व, तुम क्या बात करते हो ? संसारमें ऐसा कौन व्यक्ति है जो संग्राममें जिनेन्द्रका सामना कर सके । तुम्हारी शूरवीरताका कल सवेरे ही पता चल जायगा जब जिनेन्द्रका सेनापति रणाङ्गणमें आकर उपस्थित होगा । कहा भी है:—

"मेंढक कुएँमें तभी तक निर्भय होकर गरजता है, जब तक उसे भयङ्कर फणधारी साँप नहीं दिखलायी देता । चिकने नीलाद्रिकी तरह काले हाथी तभी तक चिंघाड़ते हैं, जबतक वे अपने कानसे रोषभरे सिंहकी गर्जना नहीं सुनते । साँपके विषका उत्कट प्रभाव भी तभीतक रहता है, जबतक गरुड़के दर्शन नहीं होते । और अन्धकार भी तबतक रहता है, जबतक सूर्य उदित नहीं होता ।"

कविने इस आशयकी एक और बात कही है । वह यह है—

"जबतक सूर्यका तेज प्रकट नहीं होता तभी तक खद्योत चमकते हैं । इसी तरह साँप भी तभीतक अपनेमें शक्तिका अनुभव करता है, जबतक उसे गरुड़का साक्षात्कार नहीं होता ।"

मोह कहने लगा—इसलिए भाई, तुम व्यर्थ बात न करो । कल तुम्हें अपने-आप अपनी शक्तिका पता चल जावेगा ।

* ४ एवं वचनमाकर्ण्य मनोभवोऽब्रवीत्—अहो, युवयोः परस्परं किमनेन विवादेन ? यत उक्तं च—

"अज्ञातचित्तवृत्तीनां पुंसां किं गलगर्जितैः ।
शूराणां कातराणाञ्च रणे व्यक्तिर्भविष्यति ।।८३।।"

तत् प्रभाते जिनेन्द्रस्य हरिहरपितामहादीनां यत्कृतं तदहं यदि न करोमि तदा ज्वलितानलप्रवेशं करिष्यामि । इति सर्वजनविदिता मे प्रतिज्ञा । उक्तं च—

"सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ।।८४।।"

इति श्रीठक्कुरमाइन्ददेवसुतजिन(नाग)देवविरचिते
मदनपराजये सुसंस्कृतबन्धे कन्दर्पसेनावर्णनो
नाम तृतीयः परिच्छेदः ।।३।।

* ४ मोह और मिथ्यात्वके इस प्रकारके विवादको सुनकर कामदेव कहने लगा—आप लोग परस्परमें विवाद क्यों करते है ? इस विवादसे कोई अर्थ सिद्ध होनेवाला नहीं है । कहा भी है:—

"जिनकी मनोदशाका पता नहीं है, वे व्यक्ति कुछ भी कहें उनके कहनेसे क्या होता है ? समर-भूमि में उतरनेपर सबको मालूम हो जायगा कि कौन शूर है और कौन कातर है ?"

कामदेव कहने लगा मेरा निश्चय है कि मैंने हरि, हर और ब्रह्माकी जो दशा की है वही दशा कल सवेरे यदि जिनेन्द्रकी न कर सका तो मैं जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा । नीतिकारोंकी इस बातसे मैं पूर्ण सहमत हूँ—

"राजा एक बार कहते हैं, पण्डित एक बार कहते हैं और कन्याएँ एक बार दी जाती हैं। ये तीन काम एक बार ही होते हैं।"

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन(नाग) देव-विरचित मदनपराजयमें काम-सेना-वर्णन नामका तृतीय परिच्छेद समाप्त हुआ।

चतुर्थः परिच्छेदः

* १ इतो निर्गते दूतयुगले जिनेन संवेगं प्रत्यभिहितम्—अरे संवेग, झटिति स्वसैन्याह्वानं कुरु । तदाकर्ण्य तेन वैराग्यकाहलिकमाहूय एतदुक्तम्—अरे वैराग्यकाहलिक, शीघ्रं काहलानिनादं कुरु यथा स्वसैन्यसमवायो भवति । ततस्तेन विरतिकाहला 'जिननाथः संप्राप्तः', एवं द्विकत्युच्चारणेन युक्ता कृतगम्भीरकोलाहला नादिता । अथ काहलाध्वनिमाकर्ण्य कन्दर्पोपरि परबललम्पटाः सुभटाः सम्प्रापुः । तद्यथा—

समदमदनदन्तिध्वंसकण्ठीरवा ये
छलबलकुलधन्तश्चागताः धर्मवीराः ।
अथ दश नरनाथा मुण्डसंज्ञाः प्रचण्डा
दश हि मनुजनाथाः संयमाख्या वरिष्ठाः ॥१॥
उन्नतवयसौ शूरौ भूपौ द्वौ क्षमादमाख्यौ च ।
ते दश भूपा मिलिताः प्रायश्चित्ताभिधाना ये ॥२॥
कल्पान्ते मरुताहताश्च मिलिताश्चैकत्र सप्तार्णवा
यद्वत्तद्वदतीवशौर्यसहितास्ते सप्त तत्त्वाधिपाः ।
अष्टौ ये हि महागुणा नृपवराः प्राप्तास्ततस्ते तथा
तद्वच्चाष्टकुलाचला दृढतरा अष्टौ यथा दिग्गजाः ॥३॥

तथा च—

कल्पान्ते प्राणिनाशाय द्वादशार्का यथोदिताः ।
स्मरसैन्यविनाशाय तथा प्राप्तास्तपोनृपाः ॥४॥

पंच नरेशा मिलिता आचाराख्या महाशूराः ।
अष्टाविंशति भूपा मूलगुणाख्यास्ततः प्रापुः ॥५॥

शत्रुत्रासकरा महाप्रखरतराः श्रीद्वादशाङ्गाभिधाः
सम्प्राप्ताः सुभटास्त्रयोदश ततश्चारित्रवीरेश्वराः ।
आजग्मुस्तदनन्तरं हि बलिनः कीनाशदूतोपमा
अष्टौ षट् वरवीरदर्पदलनाः पूर्वाङ्गसंज्ञा नृपाः ॥६॥

येऽनन्तवीर्यसंयुक्ताः स्मरवीरकुलान्तकाः ।
प्रापुस्ते ब्रह्मचर्याख्या भूपाला नव दुर्जयाः ॥७॥

अरिकुञ्जरगन्धगजा मिलिता नव शूरतरा नयभूपतयः ।
अथ गुप्तिनृपत्रितयं मिलितं त्वरितं जिननाथदले सबलम्
॥८॥

तथा च—

शरणागतेषु जन्तुषु सकलेष्वधारभूता ये ।
अनुकम्पागुणभूपा जिनकार्ये तत्क्षणात् प्राप्ताः ॥९॥

पंच यक्षो महाकायो धीरो यो नीरदस्वनः ।
सम्प्राप्तः स्मरनाशार्थं स्वाध्यायः सिंहवत्तथा ॥१०॥

धर्मचक्रान्वितः प्राप्तो दृष्टिवीरश्चतुर्भुजः ।
स्मरदैत्यविनाशार्थं दैत्यारिः केशवो यथा ॥११॥

मतिज्ञानाख्यभूपालः संप्राप्तस्तदनन्तरम् ।
शतत्रययुतश्चान्यैः षट्त्रिंशदधिकैर्नृपैः ॥१२॥

श्रुतज्ञानाभिधानो यो जिनसहायार्थमागतः ।
मनःपर्ययसंज्ञोऽथ प्राप्तो भूपयुगान्वितः ॥१३॥

तथा च—

नरनाथत्रययुक्तः स्वपतिश्रमनाशनाय संप्राप्तः ।
अवधिज्ञाननरेशः स्वसैन्यतिलको महाशूरः ॥१४॥

ततोऽनन्तरमायातो महाशूरोऽतिदुर्धरः ।
मोहवीरविनाशार्थं केवलज्ञानभूपतिः । ॥१५॥

तथा च–

धर्मध्यानमहीपेन युक्तो निर्वेगभूपतिः ।
शुक्लेन सह सम्प्राप्तः तदौचेयगामो गतो ॥१६॥
अष्टोत्तरसहस्रेण संयुक्तो लक्षणाधिपः ।
अष्टादशसहस्रैश्च मिलितः शीलभूपतिः ॥१७॥
भूपालैः पंच भियुक्तो निर्ग्रन्थाख्यो नरेश्वरः ।
बलवीरकुलान्तो यो गुणावाजमंसुस्ततः ॥१८॥

तथा च–

सम्प्राप्तस्तदनन्तरं जिनबले वैरीभपंचाननो–
यस्याङ्घ्री नमति स्वयं सुरपतिर्विद्याधराद्यास्तथा ।
ब्रह्माद्या धरणीधरार्कशशिनो यस्याङ्घ्रियुग्मं नम-
न्त्येते नित्यमसौ रतीशदलनः सम्यक्त्वदण्डाधिपः ।१९।

एवमाद्यसङ्ख्यवीरक्षत्रियसामन्तनिचयैर्निचितं जिन-बलमतिराजते । तथा च दुर्धरोन्नतदुर्जयबलचपलमनोहरजीवस्वभावतुरङ्गमखुरपुटनिचयोद्धूतपांसुच्छन्नाम्बरमण्डलं प्रमाणचतुष्कसप्तभङ्गिमहागजचीत्काररवभयदिग्गजभयजनकं चतुरशीतिलक्षगुणमहारथरवकोलाहल निर्जितजनिघिगर्जितं पंचसमितिपंचमहाव्रतशब्दस्याद्वादभेरीभा(ता)ड(ड)नसमुत्थितातिकोलाहलबधिरीभूतं शुभलेश्यातिदीर्घयष्टिकाभिः कृतगगनमण्डलस्पर्शनाभिरनङ्गदलभयजनकं विस्फुरल्लद्धिचिह्नच्छायाच्छादितदिक्चक्रं बहुव्रतबहुस्तम्भैरूपशोभितम् । एवंविधचतुरङ्गसन्यसमन्वितः क्षायिकदर्शनमातङ्गारूढोऽनुप्रेक्षा-

सन्नाहाच्छादिताङ्गः स्वसमयनेत्रपटोत्तमाङ्गबद्धविराजमानः करतलकलितमहासमाधिगदाप्रहरणः सिद्धस्वरूपस्वरशास्त्रतत्त्वज्ञसहितः परमेश्वरो मदनोपरि यावत् संचलितस्तावत्तस्मिन्नवसरे भव्यजनैरभिवन्द्यते, शारदयाऽग्रे मङ्गलगानं गीयते, दयया शेषाभरणं क्रियते, मिथ्यात्वपंचक(केन) निम्बलवणमुत्तार्यते ।

[चतुर्थ परिच्छेद]

※ १ जब जिनराजके पाससे राग-द्वेष नामके दोनों दूत चले गये तो उन्होंने संवेगको बुलाकर कहा—संवेग, तुम बहुत जल्द अपनी सेना तैयार करो ।

जिनराजकी आज्ञा पाते ही उसने वैराग्यडिंडिमको बुलाया और कहा—अरे वैराग्यडिंडिम, तुम शीघ्र ही अपनी भेरी बजाओ जिससे अपनी सेना जल्दी एकत्रित हो जाय ।

वैराग्यडिंडिमने अपनी भेरी बजायी और उसके शब्दको सुनते ही विपक्षोंकी सेनाका विध्वंस करनेवाले योद्धा कामके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए इस प्रकार आ पहुँचे :—

उस समय दश धर्म-नरेश भी आकर उपस्थित हो गये। ये नरेश मदोन्मत्त काम-हाथीको पराजित करनेके लिए सिंहके समान प्रतीत होते थे। ठीक इसी समय दश संयम-नरेश और दश प्रचण्ड मुण्ड-नरेश भी आ डटे।

और इसी समय वयोवृद्ध क्षमा और दम दो शूरवीर भी प्रायश्चित्तनामक दश राजओं के साथ आकर जिनेन्द्रकी सेनामें सम्मिलित हो गये।

जिस प्रकार कल्पकालके अन्तमें सातों समुद्र एकत्रित हो जाते हैं उसी प्रकार अत्यन्त शूर सात तत्त्व-राजा भी आकर सम्मिलित हो

गये। और अत्यन्त सत्वशाली आठ कुलाचल और आठ दिग्गजोंके समान आठ महागुण-नरेश भी आ पहुँचे।

और जिस प्रकार कल्पान्तमें प्राणियोंके विनाशके लिए बारह सूर्य उदित हुए थे, उसी प्रकार कामकी सेनाके विध्वंसके लिए बारह तपरूपी राजा भी आकर उपस्थित हो गये।

इनके अतिरिक्त अत्यन्त शूरवीर पाँच आचार नरेश और अट्ठाईस मूलगुण-राजा भी आकर सेनामें मिल गये।

और शत्रुको त्रस्त करनेमें समर्थ अत्यन्त तेजस्वी द्वादश अङ्ग-नरेश और तेरह वीर चारित्रराजा भी आ पहुँचे। और इनके पश्चात् प्रबल कालके दूतके समान चौदह पूर्व-राजा भी आकर उपस्थित हो गये।

साथ ही अनन्तशक्तिशाली और वीर कामके कुलको विध्वस्त करनेवाले दुर्जय नौ ब्रह्मचर्य-नरेश भी आकर सैन्य में सम्मिलित हो गये।

तथा शत्रुरूपी हाथियोंके लिए गन्धगजकी तरह शूरवीर नय-राजा और तीन गुप्ति-राजा भी आकर जिनेन्द्रकी सेनामें आ मिले।

और जो समस्त शरणागत देहधारियोंको आश्रय प्रदान करते हैं वे अनुकम्पा आदि नरेश भी आ पहुँचे।

इनके अतिरिक्त पाँच मुखवाला दीर्घ शरीरधारी धीर और नीरदके समान ध्वनि करनेवाला स्वाध्याय-नरेश भी सिंहके समान कामको नष्ट करनेके लिए आकर उपस्थित हो गया।

तथा धर्मचक्रसे सम्पन्न और चतुर्भुज दर्शन-वीर भी दैत्यारि केशवकी तरह स्मर-दैत्यके विनाशके लिए आकर तैयार हो गया।

तदनन्तर मतिज्ञान-नरेश भी अपने अधीनस्थ तीनसौ छत्तीस अन्य राजाओंके साथ जिनेन्द्रकी सेनामें आकर संमिलित हो गया।

और श्रुतज्ञान तथा मन:पर्ययज्ञान भी अपने साथके अन्य दो राजाओंके साथ आकर उपस्थित हो गये।

साथ ही तीन राजाओंसे युक्त अवधिज्ञान-नरेश भी अपने स्वामी की सहायताके लिए सेनामें आ मिला। यह नरेश अत्यन्त शूरवीर था और जिनेन्द्रकी सैन्यका तिलक प्रतीत होता था।

इसके पश्चात् मोहयोद्धाके विनाशके लिए महान् शूरवीर और दुर्जय केवलज्ञान-भूपति भी आकर उपस्थित हो गया। तथा—

धर्मध्यान-नरेशके साथ निर्वेद-राजा आ मिला और शुक्ल-ध्यान-राजाके साथ बलवान् उपशम-नरेश भी आ पहुँचा।

और एक हजार आठ राजाओंके साथ लक्षण-नरेश और अठारह हजार राजाओंके साथ शील-नरेश भी आकर मिल गया।

तथा पाँच राजाओंके साथ निर्ग्रन्थ-राजा भी आकर उपस्थित हो गया और वैरि-कुलके विनाश करनेवाले दो गुण-नरेश भी आकर संमिलित हो गये।

इसके पश्चात् सम्यक्त्व-राजा भी जिनेन्द्रकी सेनामें आकर मिल गया। यह नरेश शत्रुरूपी हाथीके लिए सिंहके समान भयंकर था और इसे इन्द्र, विद्याधर, ब्रह्मा, महादेव, सूर्य और चन्द्र आदि समस्त देव स्वयं नमस्कार करते थे। साथ ही रतिपतिके संहारके लिए यह प्रमुख साधन था।

इस प्रकार जिनेन्द्रकी सेनामें जब असंख्य क्षत्रिय-वीर सामन्त आकर संमिलित हो गये तो जिनराजकी सेना अत्यन्त सुशोभित हो उठी। उस समय दुर्धर उन्नत, दुर्जय और सशक्त जीवके स्वाभाविक गुणरूपी अश्वोंके खुराघातसे जो धूलि उठी उससे आकाश-मण्डल आच्छन्न हो गया। चार प्रमाण और सप्तभंगीरूप महान् गजोंके चीत्कारके सुननेसे दिग्गजोंको भी भय होने लगा। चौरासी लक्षणरूप

महारथके कोलाहलने समुद्रके गर्जनको भी अभिभूत कर दिया। पाँच समिति, पाँच महाव्रतोंके संदेश और स्याद्वाद-भेरीके शब्दने दिङ्मण्डलको बधिर कर दिया। गगनचुम्बी शुभ लेश्यारूपी विशाल दण्डोंसे अनङ्गकी सेनाको भी भय होने लगा। विकसित लब्धिरूपी पताकाओंकी छायासे दिक्चक्र भी आच्छन्न हो गया। और विविध व्रतरूपी स्तंभोंसे सेनाकी शोभा और अधिक निखर आई।

इस तरह चतुरङ्ग सेनाके साथ क्षायिकदर्शनरूपी हाथीपर सवार होकर, अनुप्रेक्षारूप कवच पहिन कर, भालपर धर्मरूपी मुकुट धारण कर, हाथमें महासमाधि-शस्त्रको लेकर और सिद्धस्वरूप-रूपी स्वर-शास्त्रके तत्त्वज्ञको साथमें लेकर जिनराज कामके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए जैसे ही तैयार हुए, अनेक भव्य जीव उनका अभिवादन करने लगे। शारदा सामने आकर मङ्गल गान करने लगी। दया आभरण पहनाने लगी और निम्ब और नमक लेकर पाँच मिथ्यात्वरूपी नजर उतारने लगी।

* २ एवंविधस्य समरभूमिसंचलितस्य जिनेशस्याग्रे सुशकुनानि जज्ञिरे]। तद्यथा–

दधिदूर्वाक्षतपात्रं जलकुम्भश्चेक्षुखण्डपद्मानि।
सुनुमती स्त्री वीणाप्रभृतिकमग्रे सुदर्शनं जातम् ॥२०॥

तद्यथा–

प्रदक्षिणेन प्रतिवेष्टयन्तो यतो(तः)कुमारी सकलार्थसिद्धये।
वामाङ्गभागे ध्वनिरम्बुदानां जातास्त्रिसीनाञ्च तथा वृषाणाम् ॥२१॥
(जातो वृषाणां शिखिनां तथा च ॥)

उन्नतदक्षिणपक्षविभागा तत्क्षणमुक्तकृतपार्थिवशब्दा ।
शान्तदिशा भगवत्यनुलोमा सेति जिनस्य जयाय गताऽग्रे
॥२२॥

दुर्गाकौशिक वाजिवायसखरोलूकोशिवासारसा-
ज्येष्ठाजम्बुकपोतचातकवृकागोदन्तिचक्रादयः ।
यस्यैते पुरतोऽनिशं च पथिकप्रस्थानवामस्थिता-
स्तस्याग्रे मनसः समीहितफलं कुर्वन्ति सिद्धिं सदा।२३।

* २ इस प्रकार जब जिनराज प्रस्थानके लिए उद्यत हुए, उस समय निम्न प्रकारके शुभ शकुन होने लगे :—

दही, दूर्वा अक्षतपात्र, जलपूर्ण कलश, इक्षुदण्ड, कमल, पुत्रवती स्त्री और वीणा आदिके दर्शन हुए ।

साथ ही दक्षिण भागमें कुमारी और वामभागमें मेघोंकी, मयूरोंकी और बैलोंकी गर्जनाएँ होने लगीं ।

इसके अतिरिक्त दक्षिण भागमें राजाओं की 'मारो-पकड़ो की' भी ध्वनि होने लगी । और जिस दिशामें जिनराजका प्रस्थान होना था वह बिलकुल शान्त हो गयी । शकुनविदोंका कहना है—

दुर्गा, उल्लू, घोड़ा, कौवा, गधा, उलूकी, सियारनी, सारस, बूढ़ा, जम्बुक-पोत, चातक, भेड़िया और गायका दाँत जिसके प्रस्थानके समय बायें भागमें आवें उसका मनोरथ सदैव सिद्ध समझना चाहिए ।

* ३ एवं निर्गच्छन्तं जिनमवलोक्य संज्वलनेनैवं हृदि चिन्तितम्—अहोऽधुनाऽस्माकमत्रावासो युक्तो न भवति । एवमुक्त्वा मदनसकाशमागत्य प्रणम्य विज्ञापयामास—'देव देव,

जिनेन्द्रोऽसौ महाबलवान् दर्शनवीरमपणीकृत्य सम्प्राप्त एव तच्छीघ्रं जीवनस्थानं प्रति गम्यते । उक्तं च यतः–

"त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥१॥
रक्षन्ति देशं ग्रामेण ग्राममेकं कुलेन वै ।
कुलमेकेन चात्मानं पृथ्वीत्यागेन पण्डिताः ॥२॥"

तच्छ्रुत्वा मदनः सङ्क्रुद्धयमानो भूत्वा (सङ्क्रुद्धयन्) अब्रवीत्–अरे संज्वलन, यद्येवं भूयो वदसि तत्तत्क्षणादेव वधिष्यामि । अन्यच्च–

दृष्टं श्रुतं न क्षितिलोकमध्ये मृगा मृगेन्द्रोपरि संचलन्ति ।
विधुन्तुदस्योपरि चन्द्रमा(मोऽ)र्को किं वै बिडालोपरि मूषकाः स्युः ॥२४॥

तथा च–

किं वैनतेयोपरि काद्रवेयाः किं सारमेयोपरि लम्बकर्णाः ।
किं वै कृतान्तोपरि भूतवर्गाः किं कुत्र श्येनोपरि वायसाः स्युः ॥२५॥

एवमुक्त्वा मोहमाहूय एतदुक्तं कामेन–अहो मोह, अद्य रणे युद्ध्वाऽहं जिनं न जयामि चेत्तत् सागरवडवानलवदने निजकलेवरं क्षिपामि ।

मोहः प्राह–देव, सत्यमिदम् । यतः कोऽप्येवंविधः सुरतरोऽस्ति यस्त्वां जित्वा जयवान् भूत्वा निजगृहं गच्छति ? एवं मया न दृष्टो न श्रुतोऽस्ति । उक्तं च–

"हरिहरपितामहाद्या बलिनोऽपि तथा त्वया प्रविध्वस्ताः ।
त्यक्तत्रपा यथैते स्वाङ्कान्नारीं न मुञ्चन्ति ॥३॥"

अन्यच्च, अहो देव, जिनेन्द्रोऽसौ यदि कथमपि संग्राम-सम्मुखो भवति, तत्तस्य किञ्चिदन्यत् कर्त्तव्यं भवति । निगड-बन्धैर्बन्धयित्वाऽविचारकारायतने प्रक्षिप्यते(ताम्) ।

तदाकर्ण्य पंचेषुना(णा)बहिरात्मान वन्दिनमाहूय सम-भिहितम्—अरे बहिरात्मन्, यद्यत्र त्वं जिनं मे दर्शयसि तत्तव प्रभूतं सन्मानं करिष्यामि । एवमुक्त्वा स्मरवीर- नामाङ्कितं कटिसूत्रं बन्दिनो हस्ते दत्त्वा द्रुततरं सम्प्रेषितः ।

* ३ जब इस प्रकारके माङ्गलिक मुहूर्तमें जिनराज कामके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए चल पड़े तो काम के गुप्तचर संज्वलन ने सोचा—अब मुझे यहाँ रहना ठीक नहीं है । यह सोचकर वह तुरन्त कामके पास चला आया और प्रणाम करके कहने लगा—देवदेव, जिनराज महान् बली सम्यग्दर्शन वीरको साथमें लेकर आपके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए आ गये हैं । इसलिए मैं तो अब किसी सुरक्षित स्थानमें जा रहा हूँ । कहा भी है :—

"कुलके लिए एकको छोड़ दे । गाँवके लिए कुलको छोड़ दे । जनपदके लिये गाँवको छोड़ दे । और अपने स्वार्थके लिए पृथ्वीतक-को छोड़ दे ।

बुद्धिमान् मनुष्य देशको गाँवसे बचाते हैं, गाँवको कुलसे बचाते हैं, कुलको एक व्यक्तिसे बचाते हैं और अपने को पृथ्वी तक देकर बचाते हैं ।"

संज्वलनकी बात सुनकर कामको बड़ा क्रोध हो आया । वह कहने लगा—संज्वलन, यदि तुमने यह बात फिर मुँहसे निकाली तो मैं तुम्हारा वध कर डालूँगा । क्योंकि—

संसारमें यह बात न कहीं देखी गयी है और न सुनी गयी है कि हिरन सिंहके ऊपर, चन्द्र-सूर्य राहुके ऊपर और चूहे बिलावके ऊपर विक्रमण करते हैं ।

और न यह बात ही सुनने तथा देखनेमें आयी है कि गरुड़के ऊपर साँप, कुत्तोंके ऊपर खरगोश, कालके ऊपर प्राणी और बाजके ऊपर कौवे विक्रमण कर रहे हैं।

यह कहकर कामने मोहको बुलाया और उससे कहने लगा—मोह, मैंने यह निश्चय किया है कि आज समरभूमिमें उतरनेपर यदि मुझे विजय नहीं मिलती है तो मैं अपने शरीरको सागरके बड़वानलमें दग्ध कर डालूँगा।

कामकी प्रतिज्ञा सुनकर मोह कहने लगा—देव, आप बिलकुल सत्य कह रहे हैं। आजके संग्राममें विजय आपको ही संगिनी बनेगी। ऐसा कौन बलवत्तर देव है जो आपको पराजित कर सके और विजयी होकर अपने घर लौट सके। इस प्रकारका देव न मैंने सुना है और न हो देखा है। क्योंकि—

"हरि, हर और ब्रह्मा आदि प्रबल देवोंको भी आपने इस तरहसे परास्त कर दिया है कि वे निर्लज्ज होकर आज भी अपनी अङ्कको नारी-शून्य नहीं कर रहे हैं।"

मोह कामसे कहने लगा—देव, इस प्रकार एक तो जिनराजका इतना साहस ही नहीं कि वह आपका सामना करनेके लिए समराङ्गणमें आ सके। यदि कदाचित् आया भी तो यह निश्चय है कि वह आपका कुछ भी बिगाड़ न कर सकेगा। उसे पकड़कर बेड़ियाँ पहिना दी जावेंगी और वह अविचार-कारागारमें डाल दिया जायेगा।

मोहकी बात सुनकर कामने बन्दी बहिरात्माको बुलाकर कहा—अरे, बहिरात्मन् यदि तुम आज मुझे जिनराजका साक्षात्कार करा दो तो मैं तुम्हारा बहुत संमान करूँगा। इस प्रकार कहकर कामने अपने नामसे अङ्कित एक कटि-सूत्र बन्दीके हाथमें दिया और उसे शीघ्र ही जिनराजके पास भेज दिया।

* ४ अथाऽसौ बन्दी जिनसकाशमागत्य प्रणम्योवाच— देव देव, सम्प्राप्तो दूतस्मरमयमनङ्गो निजदूतापमानमाकर्ण्य । देव, त्वयेदमशुभं कृतं यदनेन मकरध्वजेन सह युद्धमारब्धम् । अन्यच्च, यद्यपि तस्य मकरध्वजस्य भयात् स्वर्गे गमिष्यसि तत्त्वां सहेन्द्रं हरिष्यति । यदि कथमप्यधुना पातालं प्रविश्य (श)सि तत् सफणीन्द्रं वधिष्यसि । यदि तोयनिधौ प्रविश्य (श)सि तज्जलं संशोष्य असून् गृहीष्यति । देव, तत् किमनेन भूरिप्रोक्तेन । यदि भवान् सक्रूरकामस्तत्स्मरकठिनकोदण्डाद्विमुक्तां बाणावलीं प्रतिसहस्व । अथवा, तस्य भृत्यत्वेन जीव । अन्यच्च—

प्रस्थापिता मम करे निजधीरवीर—
नामावली च मदनेन शृणु प्रभो त्वम् ।
कोऽस्तीन्द्रियौघविजयी तव सैन्यमध्ये
कोऽप्यस्ति दोषभयगारववीरजेता ? ॥२६॥
कोऽप्यस्ति यो व्यसनदुष्परिणाममोह—
शल्यास्रवादिविजयी वद हे जिनेन्द्र ।
मिथ्यात्ववीरसमरार्णवमज्जतां च
कस्तारकस्तव बले कथय त्वमेव ? ॥२७॥
इत्यादिवीरनिचयस्य पृथक्-पृथक्को
नाम (नामाद्य)वीरमवधारयितुं समर्थः ।
चेत् सन्ति ते वरभटाः परिमार्जयन्तु
नामावलीमथ मिमामथवा नमन्तु ॥२८॥

* ४ तदुपरान्त बन्दी जिनराजके पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके कहने लगा—देवदेव, आपने कामके दूतका इतना घोर अपमान किया कि जिसके कारण काम आपके ऊपर चढ़कर आ गया

है। और आपने यह और ही अभद्र काम किया जो कामके साथ युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। लेकिन मालूम होता है, आप इस युद्धमें विजयी न हो सकेंगे और आपको समराङ्गणसे भागना पड़ेगा। उस समय कामके डरसे और आत्म-रक्षाकी दृष्टिसे यदि तुम स्वर्ग भी पहुँचे तो वहाँ भी तुम्हारी रक्षा न हो सकेगी। काम वहाँ भी पहुँचकर इन्द्रसहित तुमको खींच लावेगा। यदि तुमने पातालमें प्रवेश किया तो काम पातालमें भी पहुँचकर शेषनागसहित तुम्हें मार डालेगा। और यदि सागरमें प्रवेश किया तो काम वहाँ भी पहुँचकर उसके जलको सुखा देगा और तुम्हें पकड़ लावेगा। जिनराज, मुझे इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि अब भी तुम्हारी इच्छा संग्राम करनेकी है तो कामके कठिन कोदण्डसे छोड़ी गयी बाणावलीका सामना करो और यदि तुम्हारा युद्ध करनेका विचार न हो तो कामकी दासता स्वीकार कर लो। इसके अतिरिक्त एक बात और है।

जिनराज, कामने हमारे हाथमें कुछ धीर-वीर पुरुषोंकी नामावली दी है। तुम उसे देखो और बताओ कि क्या तुम्हारी सेनामें ऐसा कोई धीर-वीर सुभट है जो इन्द्रिय, दोष और भय सुभटोंको जीत सके। साथ ही वह अपना वीर भी बतलाइए जो व्यसन, दुष्परिणाम, मोह, शल्य और आस्रव आदि सुभटोंको जीत सके तथा मिथ्यात्व-वीरके द्वारा समर-सागरमें डुबोए जानेवाले योधाओंको बचा सके।

बन्दी कहता गया - कामने कहा है कि इस प्रकार हमने अपनी सेनाके कतिपय वीरोंकी ही यह संख्या गिनायी है। समस्त वीरोंके नाम कौन गिना सकता है। इसलिए यदि आपके यहाँ इन योद्धाओंके प्रतिद्वन्द्वी योधा हैं तो आप इस नामावलीमें संशोधन कर दीजिए और यदि आपके यहाँ इनकी जोड़के कोई योधा नहीं हैं तो चलकर कामदेवकी अधीनता स्वीकार कीजिए।

* ५ तत्कठिनवचनं श्रुत्वा सम्यक्त्ववीरोऽप्यब्रवीत्-अरे बन्दिन्, मया मिथ्यात्वसंज्ञको वीरोऽङ्गीकृतः। पंचमहाव्रतैः पंचेन्द्रियाण्यङ्गीकृतानि । केवलज्ञानेन मोहोऽङ्गीकृतः । शुक्लध्यानेनाष्टादश दोषा अंगीकृताः । तपसा कर्म्मास्रवश्चाङ्गीकृतः । सप्ततत्त्वैर्भयवीराः । अज्ञानं श्रुतज्ञानेन । प्रायश्चित्तैः शल्यत्रयम् । गारवाश्चारित्रेणाङ्गीकृताः । सप्तव्यसनानि दयाधर्मेणांगीकृतानि । एवमादि परस्परं वरवीरलक्षनरेन्द्राः अङ्गीकृताः । कोऽनल्पं जल्पितं अति जिनेनोक्तम्-अरे, बन्दिन्, यद्य सङ्ग्रामे मम मारं दर्शयसि तत्तुभ्यं बहुदेशमण्डलालङ्कारच्छत्रादीनि दास्यामि । स चाह-देव, यद्यत्र क्षणमेकं स्थिरो भविष्यसि तत् समोहं कृतसङ्गरमनङ्गं दर्शयिष्यामि ।

एवमाकर्ण्य निर्वेगः सङ्क्रुध्यमानो भूत्वा (संक्रुध्यन्) अवोचत्-अरे भ्रष्ट, सर्वतद्वचनमप्रस्तुतं प्रभूतमुपसंहितम् । अतो यदि किञ्चिद्वदिष्यसि तद्वधिष्यामि । ततः स बन्दी चाह-भो निर्वेग, किमेवं जल्पसि, कोऽस्मिन्नस्ति यो मां हन्ति । एतदाकर्ण्य निर्वेगेणोत्थाय तस्य बन्दिनः शिरोमुण्डनं नासिकाछेदनञ्च कृत्वा द्वाराद्बहिर्निष्कासितः ।

ततो घृतसिक्तानलवत् कोपं गत्वाऽब्रवीत्-हे निर्वेग, युष्माकं चेदनङ्गहस्तेन यमायतनं न दर्शयामि तदहमनङ्गचरणद्रोहको भवामि । एवमुक्त्वा निर्गतो बन्दी ।

* ५ बहिरात्मा बन्दीकी बातको सम्यक्त्व-वीर सुन रहा था। उसे बन्दीका यह वार्तालाप बहुत अशिष्ट मालूम हुआ । उसने कहा—बन्दिन्, तुम क्या बेकार अनर्गल प्रलाप कर रहे हो ? मैं मिथ्यात्वसे लड़ूँगा । पाँच महाव्रत पञ्चेन्द्रिय-सुभटोंसे युद्ध करेंगे । केवलज्ञान मोहसे संग्राम करेगा । शुक्लध्यान अठारह दोषोंके लिए पर्याप्त

होगा तप कर्मास्रवोंके साथ जुटेगा। सात तत्त्व भय-वीरोंके साथ युद्ध करेंगे। श्रुतज्ञान अज्ञानका सामना करेगा। प्रायश्चित्त तीन शल्योंसे भिड़ेगा। चारित्र अनर्थदण्डोंसे लड़ेगा। दया-धर्म सात व्यसनोंके साथ संग्राम करेंगे। इस प्रकार हमारे दलके लाखों योधा तुम्हारे सुभटोंके साथ लड़नेके लिए तैयार हैं।

सम्यक्त्व और बहिरात्माकी इस चर्चाके प्रसङ्गमें जिनराजने बन्दीसे कहा—वन्दिन्, यदि आज रणस्थलीमें तुमने कामका साक्षात्कार करा दिया तो तुम्हें बहुत देश, मण्डल, अलङ्कार और छत्र आदिक पारितोषिकमें दूँगा।

उत्तरमें बहिरात्मा जिनराजसे निवेदन करने लगा—देव, यदि आप यहाँ क्षण भरके लिए स्थिर रहें तो मैं रणाङ्गणमें अवतरित हुए मोहसहित कामको दिखला सकता हूँ।

बहिरात्माकी इस बातसे निर्वेगको बड़ा क्रोध हो आया। वह कहने लगा—अरे नीच, तू हमारे स्वामीका इस प्रकार उपहास कर रहा है। चुप रह। अब यदि एक भी शब्द मुँहसे निकाला तो मैं तेरे प्राण ले लूंगा।

बन्दी कहने लगा—अरे निर्वेग, क्या कह रहे हो? दुनियामें ऐसा कौन है जो मेरे प्राण ले सके।

निर्वेगने ज्यों ही बन्दीकी बात सुनी, उठकर खड़ा हो गया और बन्दीका सिर घोंटकर उसकी नाक काट डाली तथा उसे समिति-भवनके द्वारसे बाहर निकाल दिया।

इस व्यवहारसे बहिरात्मा क्रोधसे इस प्रकार जल उठा जिस प्रकार घीके पड़नेसे आग भभक उठती है। वह निर्वेगसे कहने लगा—निर्वेग, यदि कामके हाथसे तुझे यमलोक न पहुँचा दूँ तो तू मुझे कामदेवका द्रोही समझना। बहिरात्मा बन्दी इस प्रकार कहकर वहाँसे चल दिया।

❋ ६ ततस्तमागच्छन्तमेवंविधं मकरध्वजं प्रति कैश्चिद् दृष्ट्वा परस्परं विहस्योक्तम्—अहो, पश्यत पश्यत बन्दिनोऽवस्थाम् । कीदृशो भूत्वाऽऽगच्छति ?

ततः स उवाच—अहो हताशा, प्रथमं ममैवं संजातम् । अधुना युष्माकमपीत्थमेवं (व) भविष्यति । यतो यस्मिन् कार्ये प्रथमं यादृशो शकुनलब्धिः स्यात्तादृशं तत्कार्यं भवति । तथैवं मे प्रथमं संजातम् । तदत्रैवेदं शकुनम् । तदधुना यद्यस्ति शक्तिस्तद्युद्धं क्रियते (ताम्) । अथवा वेशत्यागेन जीव्यते (ताम्) ।

एवं श्रुत्वा मदनो बन्दिनमपृच्छत्—अरे बहिरात्मन्, स जिनः किं वदति ? तदाकर्ण्य सम्मुखो भूत्वाऽब्रवीद् बन्दी—हे स्वामिन्, पश्यन्नपि किं न पश्यति ? अन्यच्च—

जनो जनोक्ति या(यां) ब्रूते सा सत्याऽस्मिश्च दृश्यते ।
विद्यमानं शिरो हस्ते कति घाताश्च तत्करे ॥२६॥

तथा च—

कोऽस्मिल्लोके शिरसि सहते यः पुमान् वज्रघातं
कोऽस्तीदृक् यस्तरति जलधिं बाहुदण्डैरपारम् ?
कोऽस्त्यस्मिन् यो दहनशयने सेवते सौख्यनिद्रां
ग्रासैर्ग्रासैर्गिलति सततं कालकूटं च कोऽपि ॥३०॥

अन्यच्च—

सन्तप्तं द्रुतमायसं पिबति कः को याति कालगृहं
को हस्तं भुजगानने क्षिपति वै कः सिंहदंष्ट्रान्तरे ।
कः शृङ्गं यमयाहिषं निजकरैरुत्पाटयत्याशु वै
कोऽस्तीदृग् जिनसम्मुखो भवति यः संग्रामभूमौ
पुमान् ॥३१॥ (युग्मम्)

एवं बन्दिनो वचनमाकर्ण्यारुणलोचनः क्रुद्ध्यमानो भूत्वा(क्रुद्ध्यन्) निर्गतो मकरध्वजः । तद्यथा–

सीमां यथाऽपास्य विनिर्गतोऽम्बुधिः
केतुर्यथा क्रुद्धशनैश्चरो यथा ।
कल्पान्तकालेऽद्भुतपावको यथा
विनिर्गतो भाति तथा मनोभवः ॥३२॥

तस्मिन्नवसरे तस्यापशकुनानि बभूवुः । तद्यथा–

शुष्कारिष्टस्थितोऽरिष्टो विरौति विरसस्वनैः ।
पूर्वदिक् ध्वांक्षवज्जाता पथि वामो गतः फणी ॥३३॥
लग्नोऽनलः प्रचण्डश्च खररवो खरोलूकौ ।
दृष्टौ शूकरशशकौ गोधानकुलौ शिवासखा(खः)॥३४॥
तारस्वरेण कुकुरो (शुनको) रौति कर्णौ धुनोति
सम्मुखो भूत्वा ।
दृष्टो रिक्तघटो वै पुरतः शरटं तथा तु (तथैतु)
महाक्षीत् ॥३५॥

तथा च–

अकालवृष्टिस्त्वथ भूमिकम्पो निर्घातमुल्कापतनं प्रचंडम्।
इत्याद्यनिष्टानि ततो बभूवुर्निवारणार्थं सुहृदो यथैव।३६।

एतान्यपशकुनान्यवगण्यमाणो(न्यवगणयमानो) मदनो यावन्निर्गतस्तावत्तस्मिन्नवसरे यादृशं पत्प्रवृत्तं तन्निरूप्यते ।

दिक्चक्रं चलितं भयाज्जलनिधिर्जातो महाव्याकुलः
पाताले चकितो भुजङ्गमपतिः क्षोणीधराः कम्पिताः ।
भ्रान्ता सुपृथिवी महाविषधरा क्ष्वेडं वमन्त्युत्कटं
जातं सर्वमनेकधा रतिपतेरेवं चमूनिर्गमे ॥३७॥

तथा च—

पवनगतिसमानैरश्वयूथैरनन्तै-
र्मदधरगजयूथं राजसे सैन्यलक्ष्मीः ।
ध्वजचमरवराद्यैरावृतं एवं समस्तं
पटुपटहमृदङ्गै र्भेरिनादैस्त्रिलोकी ॥३८॥

अश्वाङ्घ्रिप्रघाहतरेणुभिर्बहुतरैर्व्याप्तं त्वशेषं नभः
छत्रैरावृतमन्तरालमखिलं व्याप्ता च वीरैर्धरा ।
निर्घोषं त्र्यपजैः स्व नः प्रपतितं(तः)कर्णेऽपि न श्रूयते
वीराणां निनदैः प्रभूतभयवैर्युक्ता प्रपक्षा चमूः ॥३९॥

§ ६ जब कामदेवके कतिपय सुभटोंने बन्दीको इस प्रकार विकलाङ्ग रूपमें आते हुए देखा तो उन्हें बड़ी हँसी आयी। वे कहने लगे—अरे, देखो-देखो, बन्दी कैसी दुखद अवस्थामें आ रहा है !

बन्दी इन लोगोंको इस प्रकार उपहास करता हुआ देखकर कहने लगा—अरे मूर्खों, मुझे देखकर क्यों हँस रहे हो। अभी मेरी यह दुर्गति हुई है और आगे तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है। कारण जिस कार्यमें पहले जैसे शकुन दिखते हैं उस कार्यका अन्त भी लगभग उसी प्रकारका होता है। जब मेरी इस प्रकार की दुर्गति हुई है तो कह नहीं सकता कि इस युद्ध का परिणाम स्वामीके हितमें किस प्रकार का रहेगा। इसलिए आप लोग अच्छी तरहसे सोच लीजिए। यदि हम लोगोंमें जिनराजकी सेनाके सामना करनेकी शक्ति हो तो ही हम लोगोंको लड़ना चाहिए। अन्यथा इस देशको छोड़कर यहांसे चल देना चाहिए। जिससे जीवन-रक्षा हो सके।

कामदेव बन्दीकी यह बातें सुन रहा था। उसने बन्दीको बुलाया और उससे कहने लगा—अरे बहिरात्मन्, बतलाओ तो वह जिनराज क्या कह रहा है ? कामदेवकी बात सुनकर बन्दी उसके

सामने उपस्थित हुआ। कहने लगा—स्वामिन्, आप देखते-समझते हुए भी पूछ रहे हैं कि जिनराज क्या कह रहा है ? वह कहने लगा—

लोग जो "हाथ कंगनको आरसी क्या" वाली किंवदन्ती कहते हैं वह इस सम्बन्धमें पूर्णतया लागू हो रही है। यह बात वैसी ही है, जिस प्रकार किसी आदमीका कटा हुआ सिर अन्य किसी व्यक्तिके हाथपर रक्खा हो और लोग पूछें कि उस आदमीके हाथमें कितने आघात लगे हैं ?

और स्वामिन्, मेरी यह खुली घोषणा है—जिस प्रकार संसारमें कोई पुरुष सिर पर वज्रका आघात नहीं झेल सकता, बाहुओंसे अपार समुद्र-तरण नहीं कर सकता, आगपर सुखपूर्वक शयन नहीं कर सकता, विषको ग्रास-ग्रास रूपसे भक्षण नहीं कर सकता, संतप्त और पिघले हुए लौहका पान नहीं करसकता, यमराजके आलयमें प्रवेश नहीं कर सकता, सांप और सिहके मुंहमें हाथ नहीं डाल सकता, और अपने हाथसे यमराजके महिषके सींग नहीं उखाड़ सकता है उसी प्रकार ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो समर-भूमिमें जिनराजका सामना कर सके।

बन्दीकी यह बात सुनकर कामदेवके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। और जिस प्रकार कल्पान्तकालमें समुद्र सीमा तोड़कर आगे निकल जाता है, केतु और शनैश्चर क्रुद्ध हो जाते हैं और अग्निदेव प्रचण्ड हो जाता है उसी प्रकार कामदेव भी जिनराजके साथ युद्ध करनेके लिए चल दिया।

कामदेवने जैसे ही जिनराजपर चढ़ाई करनेके लिए प्रस्थान किया, उसे निम्न प्रकारके अपशकुन दिखलायी दिये :—

कौवा सूखे वृक्षपर बैठा हुआ विरस ध्वनि करने लगा। पूर्व दिशाकी ओर कौवोंकी पङ्क्ति उड़ती हुई दिखलायी दी। और सांप मार्ग काटकर बायीं ओर चला गया।

प्रचण्ड आग लग गयी। गधा और उल्लूका तीखा स्वर होने लगा। शूकर, खरगोश, छिपकली, नकुल और शृगाल भी दिखलाई दिये।

कुत्ता सामने आकर रोने लगा और कान फटफटाने लगा। दुष्ट पुरुष, खाली घड़ा और गिरगिट भी सामने दिखलायी दिये।

असमयमें वर्षा होने लगी। भूकम्प होने लगा। वज्र और उल्कापात होने लगा।

कामदेवको यात्राके समय यह सब घोर अपशकुन हुए जो एक सहृदय मित्रकी भांति इस बातको व्यक्त कर रहे थे कि कामदेवको इस समय अपनी यात्रा अवश्य स्थगित कर देनी चाहिए।

कामदेवने इन अपशकुनोंको देखा और उसे अनुभव हुआ कि इस समय हमारा जाना श्रेयस्कर नहीं है। फिरभी वह लड़ाईके लिए निकल ही पड़ा।

उस समय भयसे दिशाएँ चलित हो गईं। समुद्र भी अत्यन्त व्याकुल हो उठा। पातालमें शेष नाग और मध्यलोकमें पर्वत कम्पायमान हो गये। पृथ्वी घूमने लगी और महान् विषधर विष-वमन करने लगे।

उस समय पवनके समान अनन्त घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंसे सेनाकी शोभा द्विगुणित हो गयी। आकाश ध्वजाओं, चामरों और अस्त्रोंसे खचाखच भर गया। और नगाड़े मृदङ्ग तथा भेरियोंकी ध्वनि तीनों लोकमें व्याप्त हो गयी।

और गगनमण्डल अश्वोंके पद-रजसे सम्पूर्णतया आच्छन्न हो गया। छत्रोंसे समस्त मध्यभाग व्याप्त हो गया और पृथ्वी वीरोंसे आक्रान्त हो गई। रथोंकी चीत्कारसे कान इतने भर गये थे कि कोई शब्द भी सुनाई न पड़ता था। उस समय सेनामें केवल वीरोंके भयंकर शब्द ही सुनायी पड़ रहे थे।

* ७ एवमुभयसैन्यकोलाहलमाकर्ण्य सञ्ज्वलनेनैवं हृदि चिन्तितम्–किमयमनङ्गो मूर्खः ? यतो जिनबलं सबलं दृश्यते ; तत्किं करोमि ।

उक्तं च यतः–

"उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥४॥
प्रायः सम्प्रति कोपाय सन्मार्गस्योपदेशनम् ।
निर्लूननासिकस्यैव विशुद्धादर्शदर्शनम् ॥५॥
मूर्खत्वं हि सखे ममापि रुचितं तस्मिंस्तदष्टौ गुणा
निश्चिन्तो बहुभोजनो वठरता रात्रौ दिवा सुप्यते ।
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमानौ समौ
दत्तं सर्वजनस्य मूर्ध्नि च पदं मूर्खः सुखं जीवति ॥६॥
मूर्खैरपक्वबोधैश्च सहालापैश्च(पे च)तुष्फलम् ।
वाचां व्ययो मनस्तापस्ताडनं दुष्प्रवादनम् ॥७॥"

इति । तथापि परं किंचिद्ब्रूणिष्यामि यतोऽयमस्मत्स्वामी । एवमुक्त्वा सम्मुखो भूत्वाऽब्रवीत्–देव, दुर्द्धरोऽयं जिनराजः । ततः किमनेनच्छलेन प्रयोजनम् ?

ततः स्मर ऊचे–अरे मूढ, क्षत्रियाणां छलार्थं जीवितम् ? उक्तं च–

"यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै–
र्विज्ञानशौर्यविभवार्यगुणैः समेतम् ।
तन्नाम जीवितफलं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥८॥"

अन्यच्च–प्रथमं मे रत्नानि गृहीत्वा गतः । द्वितीयं मम दूतापमानं कृतम् । तृतीयं जगत्प्रसिद्धबन्दिनो नासिकाछेदः

कृतः । चतुर्थं स्वयमेवा भ्यागतोऽस्ति । तदेतच्छलं सिद्धय-ङ्गनार्थं परित्यजन् न लज्जेऽहम् । अन्यच्च, यदि कथमपि जिनं संग्रामे प्राप्नोमि, तत्सुरनरकिन्नरयक्षराक्षसफणीन्द्रादीनां यत् कृतं तत् करिष्यामि । यतो हि प्रसूतदिवसपर्यन्तं स्व-गृहाभ्यन्तरे गर्जनां कुर्वन् सुखेन स्थितः । अतो मद्गोचरायां पतितः कुतो यास्यति ।

उक्तं च–

"तावच्छौर्यं ज्ञानसम्पत् प्रतिष्ठा तावच्छीलं संयमः स्यात्तपश्च ।
तावत् सिद्धिः सम्पदो विक्रमो वै यावत् क्रुद्धः सङ्गरे
नाहमेकः ॥६॥"

※ ७ इस प्रकार दोनों पक्षकी सेनाओंका कोलाहल सुनकर संज्वलनने अपने मनमें सोचा कि क्या कामदेव मूर्ख हो गया है जो उसे यह भी मालूम नहीं है कि उसकी सेना कहाँ तक शक्ति-सम्पन्न है? समझमें नहीं आता कि स्वामीके पास जाकर क्या कहूँ? क्योंकि—

"मूर्ख पुरुषोंको उपदेश देनेसे उन्हें क्रोध ही आता है। बातका समाधान तो कुछ होता नहीं। जिस प्रकार सांपको दुग्ध-पान करानेका परिणाम विष-वृद्धि ही होता है।

जिस प्रकार नासिकाविहीन पुरुषको दर्पण बुरा लगता है उसी प्रकार मूर्ख पुरुषको सन्मार्ग का उपदेश भी अच्छा नहीं मालूम देता।

संज्वलन सोचता है—वैसे मूर्खता मुझे बड़ी अच्छी लगती है। क्योंकि उसमें आठ गुण हैं—

मूर्ख आदमी निश्चिन्त रहता है। बहुत भोजन करता है। उसकी पाचनक्रिया ठीक रहती है। रात-दिन सोनेको मिलता है।

कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार नहीं करना पड़ता। किसीकी बातपर ध्यान नहीं देना पड़ता है। मान-अपमान नहीं मालूम देते और सबके सिर-माथे रहनेका अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार मूर्ख मनुष्य सदैव सुखपूर्वक जीवन-यापन करता है।

अपक्वज्ञानी मूर्खोंके साथ वार्तालाप करनेके चार परिणाम हैं :—वाणीका श्रम, मनस्ताप, दण्ड और अनर्थका [illegible] ।

संज्वलन मनमें सोचता है—यद्यपि यह बात है, फिर भी कामदेव हमारा स्वामी है। इसलिए मुझे उससे इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ अवश्य कहना चाहिए।

यह सोचकर संज्वलन कामदेवके सामने पहुँचा। और कहने लगा—स्वामिन् आप जिनराज को जीत नहीं सकते। फिर यह छल क्यों कर रहे हैं ?

कामदेव कहने लगा—अरे मूढ़, क्षत्रियोंकी वृत्तिको तू छल बतला रहा है। क्या तुझे जीवनकी परिभाषा नहीं मालूम है ?

"मनुष्योंका यदि एक क्षण भी विज्ञान शौर्य, विभव और आर्यजनोचित प्रवृत्तियोंके साथ व्यतीत होता है, बुद्धिमान् उसे ही जीवनका फल कहते हैं। वैसे तो कौवा भी चिरकाल तक जीवित रहकर अपनी उदर-पूर्ति करता रहता है।"

कामदेव कहता गया—संज्वलन, फिर जिनराजने जितने अपराध किए हैं, हम उन्हें क्या-क्या गिनावें। पहले तो इसने हमारे रत्न चुराये। दूसरे हमारे दूतका अपमान किया। तीसरे जगत्प्रसिद्ध बन्दीकी नाक काटी और विरोधाग्निको पहलेकी अपेक्षा और अधिक प्रज्वलित किया। और चौथे यह हमारे ऊपर स्वयं ही चढ़कर आगया है। संज्वलन तुम्हारी दृष्टिमें यदि यह छल ही है तो मैं सिद्धि-अङ्गनाके लिए उसे छोड़कर लज्जित नहीं होना चाहता। और यदि

मैं जिनराज को किसी तरह संग्राममें प्राप्त कर सका तो उसकी भी वही दशा करूंगा जो सुर, नर, किन्नर, यक्ष, राक्षस और फणीन्द्रोंकी की है। अब तक जिनराज अपने घरमें बैठकर ही गरजता रहा है। अब मेरे जालमें आ फंसा है और देखते हैं कि इस जालसे वह किस प्रकार निकलता है। क्योंकि—

"पुरुषोंके शौर्य, ज्ञान, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा शील, संयम, चारित्र, सिद्धि, सम्पत्ति और पराक्रम तभी तक साथ देते हैं जब तक मैं क्रुद्ध होकर रणाङ्गणमें अवतीर्ण नहीं होता।"

*** ८ ततो बन्दिनाऽभिहितम्—देव, पश्य पश्य। सम्प्राप्तः सम्प्राप्तोऽयं जिननाथः तत्किमेवं गलगर्जसि। एवमुक्त्वा बन्दी स्मरं प्रति जिनसुभटान् दर्शयामास।**

तथा च—

पश्य निर्वेगवीरोऽयं खड्गहस्तो महाबलः।
पश्य दण्डाधिनाथोऽयं सम्यक्त्वाख्यो हि दुर्द्धरः ॥४०॥
सम्मुखो दुर्द्धरोऽयं वै तपवीरोऽतिदुर्जयः।
सम्प्राप्ताः पश्य पश्यैते महाव्रतनरेश्वराः ॥४१॥
ज्ञानवीरा महाधीरा यैर्जितं सचराचरम्।
पश्यायं संयमो वीरो वैरिणामपरो यमः ॥४२॥

एवमाद्यनन्तं जिनसैन्यं यावद्बन्दिना दर्शितं तावन्मदनबलं वेगेन निर्गतम्। ततोऽनन्तरं जयका(क)रणार्थं दलयुगलमामिलितम्। तद्यथा—

तोरैर्वाचालभल्लैः परशुहयगदामुद्गराद्धैस्चुचापै
र्नाराचैर्भिण्डमा(पा)ला(लैः)हलझषमुसलैः
शक्तिकुन्तैः कृपाणैः।

पट्टीशैश्चक्रवज्रप्रभृतिभिरपरैर्विश्वशस्त्रैस्तथास्त्रै-
रन्योन्यं युद्धमेवं मिलितबलयुगे वर्तते सद्भटानाम् ।४३।

तथा च–

एके वै हन्यमाना रणभुवि सुभटा जीवशेषाः पतन्ति
ह्येके मूर्च्छां प्रपन्नाः स्युरपि च पुनरुन्मूर्छिता वै भवन्ति ।
मुञ्चन्त्येकेऽट्टहासं निजपतिकृतसम्मानमाद्यं प्रसादं
स्मृत्वा धावन्ति चाग्रे जिनसमरभयाः प्रोद्वियन्तो हि
मूत्वा ॥४४॥

एके वै कातराणां समरभरमणात् त्रासमुत्पादयन्ति
ह्येके सम्पूर्णघातैरुपहृतवपुषो नाकनारीप्रियाः स्युः ।
एके ये धीरवर्या रिपुहृतजठरालम्ब्य(म्ब)मानान्त्रजाला-
घातैः संभिन्नदेहा अपि भयरहिता वैरिभिर्यान्ति योद्धुम्
॥४५॥

एके विभ्रान्तनेत्रास्त्रुटितपदभुजा शोणितैर्लिप्तदेहाः
सङ्ग्रामे भान्ति वीरा दवतरुगहने पुष्पिताः किंशुकाः स्युः ।
अन्योन्यं बाणघातोच्छलितभटशिरोराहुशङ्कां दधेऽर्को
युद्धं मिथ्यात्वनाम्नस्त्विति समरभरे वर्तते दर्शनस्य।४६।

एवं यावदुभौ विग्रहं कुरुतस्तावद्यो जिनस्याग्रणीर्दर्शन-
वीरः स मिथ्यात्ववीरेण सङ्गरार्णवे भङ्गमानीतः । तावत्
कीदृशः सङ्गरार्णवः । तद्यथा–

मेदोमांसवसाविकर्दमयुतो रक्ताम्भसा पूरितः
प्रध्वस्ताश्वखुरौघशुक्तिसहितः छत्रादिफेनाकुलः ।
नानावीरकिरीटमौक्तिकमहारत्नादिशिक्ता(सिकता)-
न्वितो
मिथ्यात्वाद्भुतबाडवानलयुतः कोलाहलैर्गर्जितः ।४७।

तथासिच्छुरिकादिशस्त्रनिचयो भातीव मीनाकुलिः
केशास्नायुशिराम्बजालनिचयः शैवालवद् दृश्यते ।
यानीभेन्द्रकलेवराणि पतितानीरणाम्भोनिधौ
पोतानीव विभान्ति तानि रुधिरे चाऽस्थीनि शङ्खा इव
॥४८॥

वीक्ष्येदरणसागरं जिनपतेः सैन्यञ्च नश्यस्यलं
मार्गं त्यज्य(त्यक्त्वा धर्मं)विशल्यमार्गनिचये
दीना(नं)जनं(ना)शङ्कितम् ।
धीरत्वं स्वपतेर्न लक्षयति तद्वाञ्छत्यहो मन्दिरं
मिथ्यात्वस्य भयाम्बरेषु शरणं गच्छत्स्वनेकेषु च ॥४९॥
त्यक्त्वात्मशरणं जातमतीचारे प्रवासितम् ।
कस्यापि भज्यते नाशा मिथ्यात्वेनेति तर्जितम् ॥५०॥

※ ८ इतने ही में बन्दीने कहा—स्वामिन् देखिए, जिनराज आगये । आप यह क्या गला फाड़ रहे हैं ? यह कह कर बन्दी कामके लिए जिनराजके सुभट दिखलाने लगा ।

वह कहने लगा—देखो, यह अत्यन्त बलवान् निर्वेग वीर है, जिसके हाथमें खड्ग चमक रहा है । और यह दण्डाधिपति सम्यक्त्व है, जिसे कोई पराजित नहीं कर सकता ।

सामने यह दुर्जय और दुःसह तत्त्व-वीर है, और देखो-देखो, यह महाव्रत-राजा भी आ गए हैं ।

साथ ही चराचर विजेता और महाधीर यह, ज्ञान-वीर हैं और देखो, यह संयम वीर है जो वैरियोंके लिए द्वितीय यमकी तरह है ।

बन्दी इस प्रकारसे कामदेवको जिनराजकी सेनाके सेनानियोंका परिचय करा ही रहा था कि इतनेमें कामकी सेना वेगसे आगे निकल गयी और जिनराज तथा कामकी सेनामें भयंकर संघर्ष छिड़ गया ।

उस समय तीर, भाला, फरसा, गदा, मुद्गर, धनुष, बाण भिण्डि, हल मुसल, शक्ति, कुन्त, कृपाण, चक्र और दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे दोनों दलके योधाओंमें युद्ध होने लगा।

इस युद्धकालमें अनेक सैनिक मरे और जीवन-शून्य होकर पृथ्वीपर गिर गए। कुछ मूर्च्छित हो जाते थे और कुछ पुन: सावधान होकर लड़ने लगते थे। किन्हींका हँसना बन्द हो गया था और कुछ अपने स्वामीका प्रोत्साहन प्राप्त करके स्वामीके आगे-आगे दौड़ रहे थे।

अनेक सैनिक युद्धसे डरकर कातर हो गये। कोई सम्पूर्ण शरीरमें आघात पहुँचनेसे मर गये और स्वर्गमें जाकर देवाङ्गनाओंके प्रेम-पाश हुए। कुछ धीर-वीर सैनिक इस प्रकारके थे जो शत्रुओंके आघातोंसे शरीरकी अन्तड़ियाँ कट जानेपर भी निर्भय होकर वैरियोंके साथ युद्ध करते रहे।

कुछ सैनिकोंकी आंखे फिर गयीं। किन्हींके हाथ-पांव कट गये। और किन्हींके शरीर खूनसे लथ-पथ हो गये। इस युद्धकालमें वे वीर सेनानी इस प्रकारसे मालूम हुए जैसे वृक्षावली-मण्डित अरण्यमें किंशुक फूले हुए हों। उस समय बाणोंके प्रहारसे अनेकों कटे हुए शिर उछलते थे जो राहुके समान प्रतीत होते थे और उनसे ऐसा मालूम देता था जैसे अनेकों राहु और सूर्यका युद्ध हो रहा हो। इस प्रकार मिथ्यात्व और दर्शनवीरका यह युद्ध अत्यन्त भयंकर था।

इस तरह मिथ्यात्व और जिनेन्द्रके अग्रणी दर्शनवीरका परस्पर युद्ध हो ही रहा था कि मिथ्यात्वने दर्शन-वीरको समरभूमिमें पछाड़ दिया। उस समय समरार्णव इस प्रकारसे प्रतिभासित होने लगा—

जिनेन्द्रका सैन्य-सागर मेदा, मांस, चर्बी आदि कीचड़से युक्त हो गया। खूनके जलसे भर गया। घोड़ोंकी टूटी हुई खुररूपी

शुक्तियोंसे पूर्ण हो गया और छत्ररूपी फेनसे वह आकुल हो गया। उनके वीरोंके मुकुटोंमें जड़े हुए मोती और महान् रत्नोंकी रेतसे अन्वित हो गया। मिथ्यात्वरूपी अद्भुत बड़वानल उसमें प्रवेश कर गया और कोलाहलसे गर्जना करने लगा।

इस सैन्य-सागरमें तलवार, छुरी आदि अस्त्र-समूह मीनके समान प्रतीत हुए। केश, स्नायु, नाड़ियाँ और अँतड़ियाँ सेवालके समान प्रतीत हुईं। हाथियोंके कलेवर पोतोंके समान मालूम हुए और हड्डियाँ शंखोंके समान मालूम हुईं।

*** ९ यावदेवं प्रवर्त्तते तावद्गगनस्थिता ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः कौतूहलं विलुलोकिरे। तत्र पितामहः प्रोवाच—भो सुरनाथ, पश्य पश्य जिनस्य सैन्यं भज्यमानं दृश्यते। ततः शचीपतिरवोचत्—भो अम्भोजभव, यावन्निर्वेगसहितः प्रचण्डसम्यक्त्ववीरः न प्राप्नोति तावज्जिनसैन्यस्य भङ्गो भविष्यति। तदिदानीं क्षणमेकं स्थिरीभव, यावत्सम्यक्त्वनिःशङ्काशक्तिघातेन शतखण्डीभूतं मिथ्यात्वं न दर्शयामि।**

पुनः स चाह—भो शक्र, यदि कथमपि मिथ्यात्वस्य भङ्गो भविष्यति तन्मोहमल्लः केन जेतव्यः? उक्तं च—

"न मोहाद्बलवान् धर्मस्तथा दर्शनपञ्चकम्।
न मोहाद्बलिनो देवा न मोहाद्बलिनोऽसुराः ॥१०॥
न मोहात् सुभटः कोऽपि त्रैलोक्ये सचराचरे।
यथा गजानां गन्धेभः शत्रूणाञ्च तथैव सः ॥११॥"

तच्छ्रुत्वा सुरेन्द्रो विहस्योवाच—हे पद्मयोने, तावन्मोहस्य पौरुषं यावत् केवलज्ञानवीरो न दृश्यते। उक्तं च यतः—

"निद्रामुद्रितलोचनो मृगपतिर्यावद्गुहां सेवते
तावत्स्वैरममी चरन्तु हरिणाः स्वच्छन्दसञ्चारिणः ।
उन्निद्रस्य विधूतकेसरसटाभारस्य निर्गच्छतो
नादे श्रोत्रपथं गते हतधियां सन्त्येव दीर्घा दिशः ॥१२॥
तावद्गर्जन्ति फूत्कारैः काद्रवेया विषोत्कटाः ।
यावन्नो दृश्यते शूरो वैनतेयः खगेश्वरः ॥१३॥"

ततः पङ्कजभवोऽप्यवोचत्—भो कुलिशधर, यदि कथमपि संग्रामे केवलज्ञानवीरेण मोहो जितस्तन्मदनराजस्य मनो-मातङ्गं धावन्तं धर्तुं कः समर्थोऽस्ति ? तवैतदनिष्टं जिने-श्वरेण कृतं यदनेन सह युद्धं कर्तुमारब्धम् । यतोऽस्माभिरस्य पौरुषं दृष्टं श्रुतमनुभूतमस्ति । अन्यच्च, ये ये चानेन जिता-स्तान् प्रकटान् किं कथयामि । एवमुक्त्वा सम्मुखं गत्वा सुरेन्द्रश्रवणे सकलं वृत्तान्तमकथ(य)त् । 'अहं शङ्करो हरि-श्चेति त्रयोऽप्येकत्र मिलित्वा वयं मदनोपरि युद्धार्थं चलिताः । ततोऽनन्तरं शङ्कर एवं बभाष—"अहं मदनारिरिति जगत्प्रसिद्धः ।" एवं तस्य वचनबलाद्द्वावपि सगर्वौ जातौ ।

ततो गिरिजेशो मदनारिनामगर्वादग्रेऽग्रे धावन्निर्गतो यावद् मदनस्थानं सम्प्राप्तस्तावत्तेन सम्मुखो दृष्टः तदनन्तरं स्वबाणेनैकेन मदनेन श्रीकण्ठो वक्षःस्थले विद्धो मूर्च्छा प्रपन्नो निपपात । तस्मिन्नवसरे गिरितनुजया निजवसनांचलेन वातं कृत्वा निजमन्दिरं नीत्वा गङ्गाजलेन संसिक्तः स्वस्थोऽभूत् ।

इतोऽनन्तरं नारायणो बाणद्वयेन हतः । तस्मिन्नवसरे कमलाऽनङ्गपादयोर्लगे । ततः पुरुषभिक्षां ययाचे—देव, मम

भर्तृवाणं शीघ्रताम् । रक्ष से(मां) शीघ्रकष्टम्(कष्टात्) । एव-मुक्त्वा स्वगृहं निनाय ।

तद्वद्बाणद्वयेन मां विव्याध । तदवसरे ऋश्यया रक्षितोऽहम् । तदुपकारात्तद्दिनप्रभृति ऋश्या मम भार्या बभूव ।

तदेतद्वृत्तान्तं त्वां प्रति कथ्यते, यतः कथनयोग्यस्त्वम् । अन्यान्यमूढान् प्रति चेत् कथ्यते तत् केवलं हास्यं भवति । यतः प्रसूता एव वेदनां वेत्ति, न च वन्ध्या । तदस्मत्सदृशानां देवानां च एवंविधस्त्रासो दर्शितस्तत्र जिनेश्वरस्य किं प्रष्टव्यम् । यतो जिनः, सोऽपि देवसंज्ञकः ।'

तच्छ्रुत्वाऽग्राथें सुरेन्द्रः प्रमाणवचनमथोचत्—अहो ब्रह्मन्, भवत्वेवम्, परं किन्त्वन्तरान्तरमस्ति । उक्तं च यतः—

"गोगजाश्वखरोष्ट्राणां काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम् ।।१४।।"

तत्किं देवत्वेन समत्वं प्राप्यते ? तथा च—

मीनं भुङ्क्ते सदा शुक्लः पक्षौ द्वौ गगने गतिः ।
निष्कलङ्कोऽपि चन्द्राच्च(चन्द्रेण)न याति समतां बकः ।।५१।।

※ १ कामदेव और जिनेन्द्रकी सेनाके इस युद्धको आकाशमें विराजमान ब्रह्मा और इन्द्र देख रहे थे। उन्होंने देखा कि मिथ्यात्वके प्रतापसे जिनेन्द्रकी सेना नष्ट हो चली है और मार्ग छोड़कर कुमार्गकी ओर उन्मुख हो रही है तथा अनेक सैनिक मिथ्यात्वकी शरणमें जा रहे हैं तो वह इन्द्रसे कहने लगा मिथ्यात्वके प्रभावसे जिनराजको सेनाने अपने स्वामीकी शरण छोड़ दी है और वह उन्मार्गमें प्रवृत्त हो गई है। मिथ्यात्वकी उपस्थितिमें शायद हो किसीकी विवेक-बुद्धि स्थिर रह सके।

इन्द्रने उत्तरमें कहा—ब्रह्मन् जब तक निर्वेगके साथमें प्रचण्ड सम्यक्त्ववीर नहीं आता है तब तक जिनराजकी सेनाकी सुरक्षा नहीं है। वह आगे कहने लगा—ब्रह्मन्, इसलिये आप क्षणभरको जरा स्थिर होकर बैठ जाओ। देखो, मैं अभी हाल निःशङ्का शक्तिके आघातसे मिथ्यात्वको सैकड़ों खण्डके रूपमें दिखलाता हूँ।

ब्रह्मा इन्द्रसे कहने लगे—इन्द्र, यह तो तुमने ठीक कहा। पर यह तो बताओ, इस प्रकारसे मिथ्यात्वके भङ्ग हो जानेपर भी मोह-मल्लको कौन पराजित कर सकेगा? कहा भी है :—

"मोहसे बलवान् न धर्म है और न दर्शन है। न देव हैं और न ही बलशाली मनुष्य है।

चराचर तीनों लोकमें मोहसे बढ़कर कोई सुभट नहीं है। जिस प्रकार गजोंमें गन्धगजकी प्रसिद्धि है, उसी प्रकार शत्रुओंमें मोह मल्ल भी प्रसिद्धिमान् है।"

ब्रह्माकी बात सुनकर सुरेन्द्र हँस पड़ा। वह कहने लगा—ब्रह्मन्, मोह का पुरुषार्थ तभी तक कार्यकर हो सकता है जब तक वह केवलज्ञान-वीर का साक्षात्कार नहीं करता है। कहा भी है—

"सिंह जब तक आंख बन्द करके गुफामें सोता है हिरण तभी तक स्वच्छन्द विचरण करते हैं। किन्तु जैसे ही वह जागता है और जागकर सटाओंको फटकारता हुआ गरजकर गुफासे बाहर आता है उस समय बिचारे हिरनोंको दिशाओंमें भागनेके सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता। और—

उत्कट विषवाले सांप तभी तक फुसकारते है, जब तक उन्हें पक्षिराज गरुड़ दिखलायी नहीं देता।"

ब्रह्माने इन्द्रकी बात सुनी और कहने लगा—इन्द्र, यदि आपके कहनेके अनुसार केवलज्ञानवीर मोहको जीत भी ले, लेकिन यह बताओ,

इस द्रुतगतिसे दौड़नेवाले मन-मातङ्गका कौन सामना कर सकता है ? इसलिए जिनेन्द्रने यह अच्छा काम नहीं किया जो कामके साथ युद्ध ठान बैठे। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने कामका पौरुष देखा है, सुना है और अनुभव भी किया है। कामने अपने पौरुष-प्रतापसे जिन-जिनको पछाड़ा है, उनकी गिनती गिनानेसे लाभ नहीं है। इतना कहकर वह सुरेन्द्रके पास गया और उसके कानमें जाकर सब कुछ वृत्तान्त सुना दिया। ब्रह्माने इन्द्रके कानमें इस प्रकार कहा—

'मैं, शङ्कर और हरि तीनों ही एकत्र मिलकर मदनके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए चले। इतनेमें शङ्कर कहने लगे—संसारमें मेरी 'मदनारि' के नामसे प्रसिद्धि है। शङ्करके इस कथनसे हम लोगोंको भी गर्व हो आया। इस प्रकार मदनारि गिरिजेश अभिमानके मारे आगे-आगे दौड़ते हुए जैसेही कामके स्थान पर पहुँचे—दोनोंका काम-से सामना हो गया। कामने श्रीकण्ठके वक्षस्थलमें एक बाण मारा, जिससे आहत होकर वह मूर्च्छित हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े। इतनेमें पार्वती वहाँ आ गयीं और अपने वस्त्रके अञ्चलसे हवाकर उन्हें अपने घर ले गयीं। वहाँ गङ्गाजलसे सिंचन करने पर वह स्वस्थ हो सके। तदनन्तर उसने नारायणको दो बाण मारे, जिससे कमला घबड़ा गयी। और कामके पैरोंमें गिरकर भीख माँगने लगी। उसने कहा—'मैं अपने पतिका जीवन-दान चाहती हूँ। कामदेव, तुम मुझे विधवा नहीं करो।" इस प्रकार प्रार्थना करके वह उन्हें घर ले गई। तदुपरान्त कामने मुझे भी अपने दो बाण मारे। उस समय मुझे ऋश्याने बचाया। इसलिए उस दिनसे लेकर ऋश्या मेरी पत्नी हो गई।"

इन्द्र, यह घटनाचक्र मैं तुम्हें इसलिए सुना रहा हूँ कि तुम इस वृत्तान्तके सुननेके पात्र हो। यदि यही बात अन्य मूढ़ोंको बताई

जाय तो वे सिर्फ हँसी ही करेंगे। क्योंकि प्रसव-जन्य वेदना का अनुभव प्रसूता ही कर सकती है, वन्ध्या नहीं। इस प्रकार जब कामने हम सरीखे देवोंको इस प्रकारका त्रास दिया है तब जिनराजका क्या कहना ? क्योंकि जिनराज भी तो एक देव ही हैं।

सुरेन्द्रने ब्रह्माकी बात सुनी और वह इस सम्बन्धमें कहने लगा—ब्रह्मन्, आपकी बात सच है। परन्तु जिनराज और आप लोगोंमें कुछ न कुछ अन्तर तो है ही। कहा भी है—

'गाय, हाथी, घोड़ा, गधा, ऊँट, काठ, पाषाण, वस्त्र, नारी, पुरुष और जल—इनमें आपसमें अन्तर ही नहीं, महान् अन्तर है।"

हे ब्रह्मन्, इसी प्रकार कोई देव होनेसे ही एक नहीं हो सकता। देखिए—

चन्द्रमा और बगला—दोनोंही मीन-भोजी हैं, शुक्लपक्षवाले हैं, गगन-विहारी हैं परन्तु निष्कलङ्क होनेपर क्या बगला चन्द्रकी समानता कर सकता है ?

*** १० ततोऽनन्तरं सम्यक्त्ववीरेण यावत्स्वसैन्यं भज्यमानं दृष्टम्, तावद्धावन्नागत्य(धावं धावमागत्य) 'अरे रे भवद्भिर्मा भेतव्यम्' इत्युक्त्वाऽऽत्मबलस्याश्वासनं कृत्वा जिनराजं प्रति प्रतिज्ञो(ज्ञा)गृहीतवान्(गृहीता)। तद्यथा—**

ये चर्मसंस्थितहविर्जलतैलभोजिनो
ये क्रूरजीवगणपोषणतत्परा नराः।
ये रात्रिभोजनरता व्रतशीलवर्जिता
ये निष्कृपाः कृतविलासविकथान्यसंग्रहाः ॥५२॥

द्यूतादिकव्यसनसप्तकशीलिनो हि ये
हिंसारताश्च जिनशासननिन्दका नराः।

ये क्रोधिनः खलु कुदेवकुलिङ्गधारिणो
ये चार्तरौद्रसहिताः स्युरसत्यवादिनः ॥५३॥
ये शून्यवादिन उदुम्बरपञ्चकाशिनो
लब्ध्वा त्यजन्ति किल जैनमहाव्रतानि ये ।
तेषां भवामि सदृशो दुरितात्मनामहं
मिथ्यात्वनामसुभटं न जयामि चेद्रणे ॥५४॥
(संदानितकम्)

एवंविधप्रतिज्ञारूढो भूत्वा सम्यक्त्ववीरो जिनमानम्य निर्गतः। ततो मिथ्यात्वं प्रत्याह—अरे मिथ्यात्व, सम्प्राप्तोऽहमधुना। मा भङ्गं यासि। यतो गगनस्थानाममराणां विद्यमानमुभयबल(लं)प्रत्यक्षम्। आवयोर्विग्रहेण। नङ्गजिनयोर्जयो वाऽजयो भविष्यति।

ततो मिथ्यात्ववीरोऽवोचत्—अरे सम्यक्त्व, गच्छ गच्छ। किं ते मरणेन प्रयोजनम्? प्रथमं दर्शनवीरस्य यादृशस्त्रासो दर्शितस्तादृशं यत्ते न करोमि चेत्तदा स्मरचरणद्रोहकोऽहं भवामि।

तदाकर्ण्य सम्यक्त्ववीरोऽब्रवीत्—अरे अधम, किमेतज्जल्पसि? यद्यस्ति शक्तिस्ते तत् स्वशस्त्रसंस्मरणं कुरु। एवं वचनमात्रश्रवणाद् मिथ्यात्ववीरस्तस्य सम्यक्त्ववीरोपरि मूढत्रयबाणावलीं मुमोच। ततः सम्यक्त्वेनान्तराले षडायतनबाणैर्विध्वंसिता। ततोऽनन्तरं मिथ्यात्ववीरः समररौद्रकोपानलदीप्यमानः शङ्काशक्तिं करतले जग्राह। तद्यथा—

वीरश्रीवेणिरेखा मदनभुजलसद्ब्रह्मरक्षाभुजङ्गी
किं वा दुर्वारवैरिक्षितिपतिपृतनानाशकीनाशजिह्वा।

किं वा क्रोधाग्निकीला किमु विजयवधूर्सिमन्मंत्रसिद्धि-
मिथ्यात्वाख्यो हि तस्योपरि समरभरे प्रेरयामास
शक्तिम् ॥५५॥

ततस्तूर्णं सम्यक्त्वेन निःशङ्कशरस्यान्तराले शङ्काशक्ति-विध्वंसिता। ततो मिथ्यात्ववीरेण आकांक्षाप्रभृतीन्यायुधानि तस्य सम्यक्त्ववीरस्योपरि प्रेरितानि। तावत्तेन सम्यक्त्व-वीरेण निष्कांक्षायुधैर्निवारितानि।

एवमन्योऽन्यं तयोस्त्रैलोक्यचमत्कारकारि युद्धं कुर्वतोर्न च कस्यापि भङ्गो भवति, तदा सम्यक्त्वेनैवं मनसि चिन्तितम्—अतः किं कर्त्तव्यम्। यद्यनेन सह सम्यग् युद्धयुक्त्या युद्धं करिष्यामि तदधमोऽयं मम दुर्जयो भविष्यति। तदेकेन घातेनायं हन्यते मया। एवमुक्त्वा परमतत्त्वसुतीक्ष्णासिना जघान। यज्ञोपवीताकृतिच्छेदेन भूमण्डले पातितः। ततोऽनन्तरं मिथ्यात्वसुभटो यावद्धरातले पतितस्तावदनङ्गदल पराङ्मुखमभूत् तद्यथा—

पराङ्मुखं याति यथा तमो रवेर्यथा खगेशस्य
भयाद्भुजङ्गमाः।
स्वनान्मृगेन्द्रस्य यथा गजादयस्तथाऽभवत् कामबलं
पराङ्मुखम् ॥५६॥

ततो गगनस्थितेनामरेन्द्रेणाम्बुजभवं प्रत्यभिहितम्—भो पितामह, पश्य पश्य सम्यक्त्वेनानङ्गसैन्यं पराङ्मुखीकृतम्। ततो जिनसैन्ये जयजयरवसमेतः परमानन्दकोलाहलः संजातः।

ततोऽनन्तरं मदनेनात्मसैन्यं भज्यमानं दृष्ट्वा परबल-कोलाहलमाकर्ण्य मोहं प्रत्येतदुक्तम्—भो मोह, परबलकोला-

हतः । कथमेतत् ? । मोहः प्राह–देव, योऽस्मदीयोऽग्रणी-मिथ्यात्ववीरः स सम्यक्त्ववीरेण समराङ्गणे पातितः तस्मात् परबलं गर्जति ।

* १० इतने ही में सम्यक्त्व-वीर आ पहुँचा । उसने देखा—हमारी सेना डरके मारे भागना ही चाहती है तो उसने शीघ्र आकर अपने सिपाहियोंको आश्वासन दिया कि आप लोग डरिए नहीं । और जिनराजके संमुख उपस्थित होकर प्रतिज्ञा की कि—

"यदि आज युद्धमें मैंने मिथ्यात्व-सुभटको पराजित नहीं किया तो मैं इन पापियोंके तुल्य पापका भागी बनूं जो चर्म-पात्रमें रक्खे हुए घी, जल और तैलके खानेवाले हैं । क्रूर जीवोंके पोषणमें निरत रहते हैं । रात्रिमें भोजन करते हैं । व्रत और शीलसे शून्य हैं । निर्दय हैं । तिल आदि धान्यका संग्रह करते हैं । जुआ आदि सप्तव्यसनसेवी हैं । हिंसक हैं । जिनशासनके निन्दक हैं । क्रोधी हैं । कुदेव और कुलिङ्गधारी हैं । आर्त्त और रौद्र परिणामवाले हैं । असत्यवादी हैं । शून्यवादी हैं । पांच उदुम्बरभक्षी हैं और महाव्रत लेकर उन्हें छोड़ देते हैं ।"

सम्यक्त्व-वीरने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया और वहांसे चल पड़ा । इसके उपरान्त वह मिथ्यात्व-से कहने लगा—अरे मिथ्यात्व, मैं आगया । गर्व मत करो । देखो, आकाशमें देवतागण बैठे हुए हैं । इनकी साक्षीमें हम दोनोंका युद्ध हो जाने दो । काम और जिनकी जय-पराजयका निर्णय इस संग्रामसे ही हो जायगा ।

सम्यक्त्वकी बात सुनकर मिथ्यात्व-वीर कहने लगा—अरे सम्यक्त्व चल, चल । क्या तू मरना चाहता है ? याद रख, जिस प्रकार मैंने दर्शन-वीरकी दुर्गति की है यदि वही हाल तेरा न कर डालूं तो तू मुझे स्वामि-द्रोही समझना ।

मिथ्यात्व-वीरकी बात सुनकर सम्यक्त्व-वीर कहने लगा—रे नीच, तू क्या कहता है। यदि तुझमें कुछ शक्ति है तो अपना हथियार सँभाल।

इतना सुनते ही मिथ्यात्व वीरने सम्यक्त्व-वीरके ऊपर तीन मूढतारूपी बाणावली छोड़ी, जिसे सम्यक्त्व-वीरने कुछ आयतनरूपी बाणोंसे बीचहीमें छेद दिया।

तदनन्तर मिथ्यात्व-वीरने युद्धरूपी प्रचण्ड कोपानलसे दीप्त होकर शङ्का-शक्तिको हाथमें ले लिया और उसे सम्यक्त्व वीरके ऊपर चला दिया।

यह शक्ति वीरश्रीकी वेणि-रेखाके समान थी। कामदेवके भुजबलसे अर्पित द्रव्यकी रक्षाके लिए सर्पिणी थी। दुःसह शत्रु-राजाओंकी सेनाके भक्षणके लिए कालकी जिह्वा थी। क्रोधाग्निकी कील थी। विजयकी वधू थी और मूर्तिमान् मन्त्रसिद्धि मालूम देती थी।

सम्यक्त्व-वीरने इस शङ्का-शक्तिको निःशङ्का-शक्तिसे बीचही-में काट दिया। इसके पश्चात् मिथ्यात्व-वीरने आकांक्षाप्रभृति आयुधोंका प्रयोग किया। लेकिन सम्यक्त्व-वीरने इन्हें भी निःकांक्षा-आयुधोंसे निष्क्रिय कर दिया।

इस प्रकार सम्यक्त्व-वीर और मिथ्यात्व-वीरमें परस्पर त्रैलो-क्यविजयी युद्ध होनेपर भी किसी एककी भी हार जीत न हो सकी।

अबकी बार सम्यक्त्व-वीरने मनमें सोचा—यदि इस मिथ्यात्व-वीरके साथ समीचीन युद्धपद्धतिसे युद्ध करता हूँ तो यह नीच दुर्जय होता जायगा। इसलिए अब एक प्रहारसे इसका घात ही कर देना चाहिए। यह सोचकर उसने परम तपरूपी अस्त्रका उसपर प्रहार कर दिया और इस प्रकार मिथ्यात्व-वीर यज्ञोपवीतके आकारमें गोलरूपसे

पृथ्वीपर आ गिरा। मिथ्यात्व-वीरके धराशायी होते ही कामकी सेना पीछे हटने लगी।

जिस प्रकार सूर्यके भयसे अन्धकार भागता है, गरुड़के भयसे साँप भागते हैं और सिंहके गर्जनसे हाथी भागते हैं उसी प्रकार कामकी सेना भी मिथ्यात्व-वीरके गिरते ही भागने लगी।

इतनेमें आकाशमें स्थित इन्द्रने ब्रह्मासे कहा—पितामह, देखिए, सम्यक्त्वने कामकी सेनामें भगदड़ मचा दी है। और इस कारण जिनराजकी सेनामें आनन्दमय जय-जयकार होने लगा है।

जब कामने देखा कि उसकी सेना डरकर भाग रही है और शत्रुपक्षीय सेनामें जय-जयकार हो रहा है तो उसने मोहसे पूछा—मोह, शत्रुवर्गकी सेनामें यह क्या आनन्द-कोलाहल हो रहा है? उत्तरमें मोह कहने लगा—स्वामिन् हमारे अग्रणी मिथ्यात्व-वीरको सम्यक्त्व-वीरने समराङ्गणमें पछाड़ दिया है। इसीलिए शत्रुपक्षीय सेनामें आनन्दका कोलाहल छाया हुआ है।

*** ११ एवं तयोर्मिथःपरस्परं वदतोस्तावन्न रकानुपूर्वी द्रुततरं नरकगतिस्थानमुद्दिश्य ढुढौके। इतः सा नरकगतिर-सिपत्रमध्ये वैतरिण्यां जलक्रीडां कृत्वा सप्तभूमिका धवलगृहे यावदुपविष्टास्ति तावन्नरकानुपूर्वी संप्राप्ता। ततः सा नर-कानुपूर्वी प्राह—हे सखि, तव भर्त्ता मिथ्यात्वनामा समराङ्गणे पतितः। तत्किं सुखेनोपविष्टासि त्वम्? एवं सखीवचनमात्र-श्रवणात् प्रचण्डवातप्रहतकदलीदलवत् कम्पमाना मूर्च्छा भूतले पपात। ततस्तत्क्षणाच्चेतनां लब्ध्वा सखीं प्रत्यवोचत्—**

हारो नारोपितः कण्ठे मया विरहभीरुणा (भीतया)।
इदानीमन्तरे जाताः सरित्सागरपर्वताः ॥५७॥

तथा च–

उद्यतप्रेम्णि प्रथमवयसि प्रावृषि प्राप्तवत्यां
स्कन्धावारं मम पतिरसौ निर्गतो मां विहाय ।
सेयं जाता जगति विदिता सुप्रसिद्धा जनोक्ति–
र्ग्रासग्रसनसमये मक्षिकासन्निपात: ।।५८।।

एवं विजल्प्य पुनरपि नरकानुपूर्वां(र्वीं) सखीं प्रति बभाण–हे सखि, मत्प्रियोऽसौ मिथ्यात्वनाम(नामा)मृत इति सत्यं मे न प्रतिभासते । यत: पूर्वं मत्पितरं नरकाभिधं प्रति, मम देहे वैधव्यचिह्नमालोक्य, केनचिल्लक्षणज्ञेनैवं निरूपितम्– 'अहो न युष्मत्पुत्रीयं यावज्जीवमक्षयसौभाग्या भविष्यति । यतोऽस्या देहेऽशुभचिह्नानि दृश्यन्ते ।' तच्छ्रुत्वा भूयोऽपि मत्पित्रा तानि चिह्नानि कानीति पृष्टो लक्षणज्ञः । ततस्तेन लक्षणज्ञेन सर्वाण्यपि चिह्नानि कथितानि । ततस्तत्समीपस्थया मया श्रुतानि तान्यद्यापि मद्वपुषि दृश्यन्ते । तानि त्वमाकर्णय– 'च (ननु) मे कृष्णमांसानि करालाश्च दन्ताः ।'

अथ नरकानुपूर्वी ब्रूते–हे सुन्दरि, किं वृथा विलापं करोषि ? वार्तामाकर्णय–

नष्टं मृतमतिक्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिता:
पण्डितानांच मूर्खाणां विशेषोऽयं यत: स्मृत:।।५९।।

तथा च–

अशोच्यानि हि भूतानि यो मूर्खस्तानि शोचति ।
स दु:खे लभते दु:खं द्वावनर्थौ निषेवते ।।६०।।

अथ सा नरकगतिं प्रति नरकगत्यनुपूर्वी प्रोवाच–तस्य भर्त्ता सम्यक्त्ववीरखड्गघातभयभीत: कुमार्गं प्रविष्टोऽस्ति, तद्वृथा शोकं मा कुरु । यत उक्तंच–

"हीयडा संवरि धाहडी मूउ न आवइ कोइ ।
अप्पउं अजरामरु करिवि पछइ अनेरां रोइ ॥१५॥"

एवं संबोध्य प्रेषिता ।

※ ११ मोह और कामकी इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें नरकानुपूर्वी शीघ्र ही नरकगतिके स्थान की ओर रवाना हुई । जैसे ही नरकानुपूर्वी नरकगतिके पास पहुँची, वह असिपत्रोंके बीच वैतरिणीमें जलक्रीड़ा करके स्वच्छ सतखण्डे भवनपर बैठी हुई नरकानुपूर्वीको दिखलायी दी ।

नरकानुपूर्वीने नरकगतिसे कहा – सखि, मिथ्यात्व नामका तुम्हारा पति युद्ध-भूमिमें मर चुका है और तुम यहाँ इस प्रकारसे सुखपूर्वक बैठी हुई हो ? नरकगतिने ज्योंही नरकानुपूर्वीकी बात सुनी, वह प्रचण्ड पवनसे आकुल कदलीके पत्तेकी तरह कांप उठी और जमीन पर गिर पड़ी । कुछ देरमें जब उसे होश आया तो वह सखी से कहने लगी—

सखि, पतिदेवसे विरह न रहे इसलिए मैंने अपने कण्ठमें हार-तक नहीं पहना था । और अब तो हमारे और उनके बीच नदी-नद, सागर और पर्वतोंका अन्तर पड़ गया है । विधि-विडम्बना तो देखो । तथा च—

एक ओर उत्कट प्रेमपूर्ण मेरी युवावस्था है और दूसरी ओर वर्षा काल आ गया है । ऐसे अवसर पर मेरे पतिदेव मुझे छोड़कर परलोक चले गए हैं इस समय तो "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" वाली सुप्रसिद्ध किंवदन्ती चरितार्थ हो रही है ।

इस प्रकार कह कहकर वह अपनी सखी नरकानुपूर्वीसे पुनः कहने लगी —सखि, मेरा मिथ्यात्व नामका पति मर गया है, यह बात मुझे भी सत्य-सी लग रही है । क्योंकि बहुत दिन पहलेकी बात है

जब किसी लक्षणशास्त्री ज्योतिषीने मेरे शरीरमें वैधव्यके चिह्न देखकर मेरे पितासे कहा था कि तुम्हारी यह पुत्री जीवनपर्यंत अक्षय सौभाग्यवती न रहेगी। क्योंकि इसके शरीरमें कुछ अशुभ चिह्न दिखलायी दे रहे हैं।

उस समय मेरे पिताने पूछा था कि वे अशुभ चिह्न कौन-कौन हैं ? तब ज्योतिषीने उन्हें वे सब चिह्न बतलाये थे। मैं पिताके पास ही बैठी थी और मैंने भी उन्हें सुन लिया था। वे चिह्न आज भी मेरे शरीरमें अङ्कित हैं। तुम चाहो तो उन्हें सुन सकती हो। मेरा मांस काला है और दांत भयंकर हैं।

नरकानुपूर्वी कहने लगी—सुन्दरि, व्यर्थ विलाप क्यों करती हो ? मेरी बात सुनो :—

पण्डित जन नष्ट हुई, मृत हुई और बिछुड़ी हुई वस्तुके सम्बन्धमें कदापि शोक नहीं करते हैं। पण्डित और मूर्खोंमें यही विशेषता तो है। यथा—

प्राणियोंके सम्बन्धमें कदापि शोक नहीं करना चाहिए। जो उनके सम्बन्धमें कुछ भी शोक करता है वह मूर्ख कहलाता है और वह दुख ही दुख भोगता रहता है। इस प्रकार उसे मूर्खता और दुख—ये दो अनर्थ कदापि नहीं छोड़ते।

नरकानुपूर्वी कहती है—इसलिए हे सखि, तुम्हारा पति सम्यक्त्व वीरकी तलवारके आघातसे आहत होकर कुमार्ग ही में प्रविष्ट हुआ है। अतः तुम व्यर्थ शोक मत करो। कहा भी है:—

"रे हृदय इस आघातको सम्हाल। मरकर फिर कोई नहीं आता। अपनेको अजर-अमर मान कर पीछे अपूर्व रुदन करना पड़ता है।"

इस प्रकार नरकानुपूर्वी उसे धीरज बँधाकर वहाँसे चल दी।

※ १२ ततोऽनन्तरं लोकत्रयशल्यो मोहमल्लोऽनङ्ग-चरणौ प्रणम्य स्वसैन्यमाश्वास्य निर्गतस्तत्र यत्र केवलज्ञानवीर-प्रभृतयस्तिष्ठन्ति, तैः सह मिलितः। तद्यथा—

पंचेन्द्रियैः पंचमहाव्रतानि तथा च शुक्लेन सहार्त रौद्रौ।
रणाङ्गणे वा मिलितास्त्रिशल्या योगैः सहैवैश्च यथा मृगेन्द्राः ॥६१॥

तत्त्वैः सहार्था मिलिता भयेशाः स्वाचारवीरैः सह चास्रवाश्च।
अमादमाभ्यां सह रागरोषौ पुण्यैः सहार्था मिलितास्त्रिदण्डाः ॥६२॥

पदार्थवीरैः सह चानयाश्च धर्मैः सहाष्टादशदोषवीराः।
अब्रह्मवीरैः सह ब्रह्मवीरास्तपोऽभिधानैश्च कषायवीराः॥६३

एवमादि यो यस्य सम्मुखो जातः स तेन सह मिलितः।

ततोऽनन्तरं परमेश्वरेणानन्देन सिद्धस्वरूपनामानं स्वर-शास्त्रज्ञं प्रष्टुमारब्धम्—अहो सिद्धस्वरूप, पुराऽस्मत्सैन्यस्य भङ्गः केन प्रकारेण संजातः? अथ स सिद्धस्वरूपो जजल्प-देव, उपशमश्रेणिभूमौ यावत् स्थितं तावद्भङ्गमा (भङ्ग प्रा) गतं(गतः)स्वसैन्यस्य। तदधुना क्षपकश्रेणिमारोहति चेत्तदवश्यं जयवद्भविष्यति। तदाकर्ण्य जिनो जहर्ष। ततो बभाण—अहो सिद्धस्वरूप, तर्हि त्वमेव मे सैन्यं क्षपकश्रेणिभू-मावारूढं कुरु। तदाकर्ण्य स सिद्धस्वरूपो जिनसैन्यं क्षपकश्रे-णिभूमावारूढं कृतवान्। तद्बलोक्य जिनोऽति सन्तुतोष।

※ १२ इस बीच लोकत्रयमें शल्य स्वरूप मोहमल्लने कामके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी सेनाको धीरज बंधाकर जहाँ

केवलज्ञानवीर आदि सुभट ठहरे हुए थे वहाँ चला गया। और वहाँ पहुँचकर उसने सबको इस प्रकारसे भिड़ा दिया :—

पाँच महाव्रत पाँच इन्द्रियोंके साथ भिड़ गए और शुक्लध्यानके साथ आर्त रौद्र मिल गए। और जिस प्रकार मृगेन्द्र हाथियोंके साथ जुट जाते हैं उसी प्रकार तीन शल्य-वीर भी योग-वीरोंके साथ रणाङ्गणमें जुट पड़े।

तत्त्वोंके साथ भय मिल गये और आचार वीरोंके साथ आस्रव मिल गये। राग-द्वेष क्षमा और संयमके साथ और अर्थ तथा दण्ड मुण्ड-सुभटोंके साथ भिड़ गये।

नव पदार्थोंके साथ अनय, धर्मोंके साथ अष्टादश दोष, ब्रह्मवीर अब्रह्म वीरोंके साथ और कषायवीर तप-वीरोंके साथ भिड़ पड़े।

इस प्रकार जो जिसके सामने आया वह दूसरेसे टक्कर लेने लगा।

तदनन्तर परमेश्वर आनन्दने स्वरशास्त्रज्ञ सिद्धस्वरूपसे पूछा—सिद्धस्वरूप, बताओ तो पहले हमारी सेनामें भगदड़ क्यों मच गयी थी ?

उसने कहा—देव, उस समय तुम्हारी सेना उपशम-भूमिकामें स्थित थी। इसलिए उसमें भगदड़ मच गयी थी। अब यदि क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ होगी तो नियमतः उसकी विजय होगी। सिद्धस्वरूपकी बात सुनकर जिनराजको बड़ी खुशी हुई। वे कहने लगे—यदि यह बात है तो तुम ही उसे क्षपकश्रेणी भूमिमें आरूढ़ कर दो। जिनराजकी बात सुनकर सिद्धस्वरूपने जिनराजकी सेनाको क्षपकश्रेणिभूमिमें आरूढ़ कर दिया। यह देखकर जिनराजको अत्यन्त हर्ष हुआ।

*** १३ ततोऽनन्तरं रथवरसङ्घट्टहेषितहयपूर्थमंदमरमत्तमातङ्गविस्फुरद्ध्वजापटंदलसम्मुखचरणमहावीरैः पूरितं**

जिनबलं यावद् दृष्टं तावन्मोहनरेन्द्रः कोपं गत्वा सम्मुखो धावन्नागत्य तमस्तम्भमारोपितवान् । ततो मोहनरेन्द्रः प्राह– अरे रे केवलज्ञानवीर, स्थतरो भव । यदि योद्धुं शक्नोषि तदग्रतरं मम सम्मुखमागच्छ । अथवा यन्मम त्रासभयाद्बिभेषि तच्छीघ्रं याहि याहि । किं ते मरणेन प्रयोजनम् ।

ततः केवलज्ञानवीरः स क्रुद्धमनो(नाः)भूत्वाऽवोचत्– अरे अधम, किमेतज्जल्पसि ? यदिदानीं सङ्गरे त्वां न जयामि तज्जिनचरणद्रोहकोऽहं भवामि । ततः समरक्रुद्धेन मोहेन आशाकार्मुकात्तस्य केवलज्ञानवीरस्योपरि गारवत्रयबाणा- वली मुक्ता । ततः केवलज्ञानवीरेण रत्नत्रयबाणेनान्तराले विध्वंसिता । भूयोऽपि केवलज्ञानवीरेण समाधिस्थानं धृत्वा उपशममार्गणेन वक्षःस्थले विद्धः समूर्छो भूमण्डले पातितः । तत्क्षणादुन्मूर्छितो भूत्वा तस्य केवलज्ञानवीरस्योपरि प्रमाद- बाणावलीं चिक्षेप । ततः केवलज्ञानवीरेण षडावश्यकबाणैः त्रयोदशविधचारित्रबाणैर्निवारिता । भूयोऽपि केवलज्ञानेन मोहः प्रचारितः–'अरे रे मोह, स्वधनुरेतद्रक्ष रक्ष' इति भणित्वा निर्ममत्वबाणेन तस्य मोहवीरस्य करतलस्थं कार्मुकं चिच्छेद । ततो मोहेन तस्योपरि मदान्धगजघटाः संप्रेषिताः । ततः केवलेन निजकरिघटाभिः संरुद्धाः, पश्चादुपशमघातेन विध्वंसिताः । तदा मोहवीरः प्रकृतिसमूहमानन्देन प्रेरित- वान् । तद्यथा–

प्रकृतिनिचयभीता भूधराः संचलन्ति
त्रिदशनरभुजङ्गाः कम्पमाना ब्रुवन्ति ।
प्रचलति वसुधाऽलं सागरा व्याकुलाः स्युः
प्रकृतिचरसमूहे प्रेरिते युद्धमेवम् ॥६४॥

एवं तं प्रकृतिसमूहं महादुर्जयं दृष्ट्वा जिनसैन्यं सभयं भूत्वा प्रकम्पितम् । तदा केवलज्ञानवीरेण सामायिकच्छेदोपस्थापन परिहार विशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातमिति पञ्चविधचारित्रविध्यायुधघातैः प्रकृतिसमूहश्चूर्णितः । ततो मोहमल्लं समराङ्गणे हत्वा धरातले मूर्च्छान्वितः पातितः । ततोऽनन्तरं पुनरुन्मूर्च्छितो भूत्वा अनाचारखड्गं करतले गृहीत्वा स क्रुद्धमना यावत्सम्मुखमागच्छति तावत्केवलज्ञानेनानुकम्पाफरीं करे धृत्वा सम्मुखं स्थित्वा स मोहो निर्ममत्वमुद्गरेण हतो जर्जरितशिरा आक्रन्दनं कुर्वंस्त्रिदशासुरनरविद्याधरविद्यमानो धरातले पातितः । एवं प्रभूतघातहन्यमानो यदा मोहवीरः प्रपतितस्तदा वृत्तान्तमधर्मोऽपि दृष्ट्वा मदनं प्रति गत्वा प्रणम्योवाच–भो देव देव, त्रैलोक्यशिल्पो मोहमल्लो भङ्गं गतः । अन्यच्च जिनसैन्येन सकलसैन्यं भङ्गमानीतम् । तच्छीघ्रं देवेन कालवञ्चना क्रियते ।

तच्छ्रुत्वा रत्योक्तम्–देव, बहिरात्मायं बन्दी युक्तमेतद्वदति । यथा गमनोपायो भवति तथा क्रियते(ताम्) । अपरं स्वभावेन शुभतरं भवति । तत्किमनेन वृथाऽभिमानेन प्रयोजनम् । तदवश्यं गम्यते(ताम्), नात्र स्थातव्यम् ।

ततः प्रीतिः प्राह–हे सखि, किं भणिष्यसि ? मूर्खोऽयम् । पापात्माऽयम् । महाऽऽग्रही ।

यतः–

आग्रहश्च ग्रहश्चैव द्वावेतौ लोकवैरिणौ ।
ग्रह एकाकिनं हन्ति, आग्रहः सर्वनाशकः ॥६५॥

ततो जिनस्य जयश्रीश्चास्माकं वैधव्यं केन वार्यते ।

अन्यच्च–

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्तं लभते फलम् ।
स्थायी भवति चात्यन्तं रागः शुक्लपटे यथा ।।६६।।

तदाकर्ण्य मदनेनोक्तम्–हे प्रिये, वचनमेतदाकर्णय–

सुरासुरेन्द्रोरगमानवाद्या जिताः समस्ताः स्ववशीकृता यैः ।
ते सन्ति मे पाणितले च बाणास्तत्किं न लज्जेऽत्र पलायनेन ?।।६७।।

एवमुक्त्वा मदनमोहनवशीकरणोन्मादनस्तम्भनेतिपंचविधकुसुमबाणावलीं शरासने सन्धित्वा (सन्धाय) मनोगजमारुह्य द्रुततरं धावन् स मदनः समराङ्गणे गत्वा जिनसम्मुखमवोचत्-अरे रे जिन, पुरा मया सह सङ्ग्रामं कृत्वा पश्चात्सिद्धिवराङ्गनापरिणयनं कुरु । मुक्त्यङ्गनालिङ्गनसुखं मे बाणावल्येव ते दास्यति ।

✻ १३ तदनन्तर मोहने जैसे ही रथोंके संघर्ष, घोड़ोंकी हिनहिनाहट मदमस्त हाथियोंकी चिंघाड़, उड़ती हुई पताकाएँ और सामने पैर बढ़ाते हुये महान् योधाओंसे पूरित जिनराजकी सेना देखी, उसे अत्यन्त क्रोध हो आया और आगे बढ़कर उसने अन्धकार-स्तम्भ गाड़ दिया तथा केवलज्ञानवीरसे कहने लगा –केवलज्ञानवीर, सावधान हो जाओ । यदि हमारे साथ युद्ध करनेकी हिम्मत हो तो तुरन्त हमारे सामने आओ । यदि तुम्हें हमारे आघातोंका डर हो तो चुपचाप भाग जाओ । मुफ्तमें मरना क्यों चाहते हो ? मोहकी बात सुनकर केवलज्ञान वीरको क्रोध हो आया । वह कहने लगा—अरे अधम, क्या बकता है ? यदि आज मैंने युद्धमें तुझे पराजित न किया तो तू मुझे जिनचरणोंका द्रोही समझना ।

केवलज्ञानकी बात सुनकर मोहको भी रोष हो आया। उसने आशा-धनुषसे गारवनामक तीन बाण लेकर केवलज्ञानके ऊपर छोड़े। परन्तु केवलज्ञानवीरने उन्हें रत्नत्रयबाणसे बीचमें ही छिन्न-भिन्न कर दिया और पुन: समाधिस्थानमें बैठकर उपशम बाण चलाया जो मोहके वक्षस्थलमें विंध गया और मोह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर आ गिरा।

मोहको थोड़ी ही देरमें चैतन्य हो आया और इस बार उसने केवलज्ञानवीरके ऊपर प्रमादरूप बाणावलीकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। किन्तु केवलज्ञानवीरने आवश्यक और यथोक्त चारित्रबाणोंसे उसे बीच ही में भंग कर दिया। और मोहसे यह कहकर कि 'अरे मोह, अपना धनुष, संभालो' उसने निर्ममत्व बाणसे मोह वीरके हाथमें स्थित धनुषको छेद डाला।

तदुपरान्त मोहने केवलज्ञानवीरके ऊपर मदान्ध गज-घटाएँ भेजीं, जिन्हें केवलज्ञानवीरने अपने हाथियोंकी घटाओंसे रोक दिया और पीछेसे उपशमके आघातसे उनका विध्वंस कर दिया।

जब मोहने देखा कि उसका अब तकका प्रयत्न बिलकुल निष्फल गया है तो अबकी बार उसने कर्मप्रकृति-समूहका प्रयोग केवलज्ञान-वीरके ऊपर किया। उसके प्रयोग करते ही इस प्रकारकी स्थिति उत्पन्न हो गयी—

प्रकृति-निचयसे डरकर पर्वत चलित होने लगे। देव, नर और साँप कम्पित होकर आवाज करने लगे। वसुधा कँप गयी और समुद्र व्याकुल हो उठे। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति क्षुब्ध हो उठी।

इस तरह प्रकृति-समूह को महादुर्जय देखकर जिनराजकी सेनामें भयका संचार होने लगा और कँपने लगी। जब केवलज्ञान वीरने अपने सैन्यकी यह स्थिति देखी तो उसने सामायिक, छेदोप-

स्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातरूपी पांच चारित्रवीरोंके प्रहारसे उस प्रकृति समूहको निःशेष कर दिया। इसके पश्चात् उसने मोहमल्लपर प्रहार किया और वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

कुछ देरके पश्चात् मोह पुनः चैतन्य हुआ और अनाचार खड्ग हाथमें लेकर क्रोधावेशमें जैसेही केवलज्ञानवीरके सामने आया वह अनु कम्पा-फाल हाथमें लेकर मोहके सामने खड़ा हो गया और निर्ममत्व मुद्गरसे उसके सिरपर जोरका प्रहार दे मारा। मोह मुद्गरके इस प्रहारको सहन नहीं कर सका। वह इस प्रहारसे बुरी तरह घायल हुआ और चिल्लाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

इस प्रकार प्रबल प्रहारके कारण जब मोह लड़खड़ाकर पृथ्वी-पर गिर पड़ा तो बन्दी बहिरात्मा इस घटनाको सुनानेके लिए कामके पास पहुँचा। बन्दीने वहां पहुँचकर उसे प्रणाम किया और निवेदन करने लगा—महाराज त्रैलोक्यके लिए शल्यस्वरूप मोहका सर्वस्व भंग हो गया है—उनकी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी है और जिन-राजकी सेनाने अपनी समस्त सेनाका विध्वंस कर दिया है। इसलिए इस समय आपको यह अवसर टालकर अन्यत्र चले जाना चाहिए।

बन्दी बहिरात्माकी बात सुनकर काम तो चुप रहा; पर रतिसे नहीं रहा गया। वह कहने लगी—स्वामिन् बन्दी ठीक तो कह रहे हैं। इस समय आपको यहांसे चल देनेका ही कोई उपाय करना चाहिए और इस प्रकार प्रस्थान कर देनेका परिणाम शुभ ही होगा। इसलिए आप झूठा अभिमान छोड़िए और यहांसे प्रस्थान कर दीजिए।

रतिकी बात सुनकर प्रीति कहने लगी—सखि, व्यर्थ क्यों प्रलाप करती हो? यह महामूर्ख, पापी और नितान्त हठी जीव है। यह हमलोगोंकी बात नहीं सुनेंगे। क्योंकि—

"आग्रह और ग्रह—ये दोनों ही लोकके अत्यन्त वैरी हैं। ग्रह जहाँ एक का नाश करता है वहाँ आग्रह सर्वस्व नाश कर डालता है।"

प्रीति कहती गयी—अब ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो जिनराज-को जयश्रीकी प्राप्ति और हम लोगोंके वैधव्य-योग को टाल सके। और फिर—

अपनी राय वहाँ देनी चाहिए जहाँ उसकी कुछ पूछ हो। जिस प्रकार स्वच्छ वस्त्रपर लाल रंग खूब गहरा चढ़ता है।

रति और प्रीतिकी बात सुनकर कामने कहा—हे प्रिये, मेरी बात तो सुनो—

जिन बाणोंके द्वारा मैंने सुर, असुर इन्द्र, उरग और मानव आदिको जीता और अपने अधीन किया, वे बाण अब भी मेरे हाथमें हैं। फिर मैं कैसे भागूं ? और इस प्रकार भागनेसे क्या मुझे लज्जित नहीं होना पड़ेगा ?

इस प्रकार कहकर मदन, मोहन, वशीकरण, उन्मादन और स्तम्भन रूप पाँच प्रकारकी कुसुमबाणावलीको धनुषपर चढ़ाकर और मनोगजपर आरूढ़ होकर उसे शीघ्र दौड़ाता हुआ कामदेव समराङ्गण-में जिनराजके सामने जाकर कहने लगा—अरे जिनराज, पहले हमारे साथ युद्ध करो। पश्चात् सिद्धिवधूके साथ विवाह करना मेरी बाणा-वलीसे ही तुम्हें मुक्त्यङ्गनाके आलिङ्गनका सुख मिल जायगा।

*** १४ तच्छ्रुत्वा मोक्षनवराजहंसेन साधुशकुनिविश्रामारामेण मुक्तिवधूकामेन पुण्यायुधोदधिमथनमन्दरेण भव्यजनकुलकमलविकासमार्त्तण्डेन मोक्षद्वारकपाटस्फोटनकुठारेण दुर्वारविषयविषधरवैनतेयेन साधुकुमुदाकरविकासचन्द्रेण मायाकरिणीमृगेन्द्रेण सङ्ग्रामावसरे मदन आहूतो जिनेन्द्रेण—रे रे**

मदनवराक, किमर्थं मे बाणमुखाग्नौ त्वं पतङ्गवत् पतितुमिच्छसि ? याहि याहि ।

ततः क्रोधाग्निज्वालाज्वलितेन मदनेनोक्तम्–अरे जिन, मच्चरित्रं किं न जानासि त्वम् ? तद्यथा–

रुद्रेण लङ्घिता गङ्गा मद्भयाद्धरिणाम्बुधौ (धिः) ।
क्षिप्रमिन्द्रो गतः स्वर्गं धरणेन्द्रस्त्वधो गतः ॥६८॥
मेरुपार्श्वे च गुप्तोऽर्को ब्रह्माऽसौ मम सेवकः ।
न मे प्रतिबलः कोऽपि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥६९॥

एवं श्रुत्वा मुक्तिपतिरवोचत्, रे कन्दर्प, तव शूरत्वं क्षुद्राणां गोपालानां पशुपतीनामुपरि । न त्वत्समत्सदृशः कोऽपि त्वया स्वप्नेऽपि जितोऽस्ति । तदिदानीं यद्यस्ति तव शक्तिस्तर्हि शीघ्रं बली भव । एतदाकर्ण्य रतिपतिना मदभरमत्तो दुर्नयरवगर्जमानो मनोमातङ्गो जिनेन्द्रोपरि प्रेरितः । तद्यथा–

उद्दण्डसंसारकरेण रम्यश्चतुष्कषायैश्चरणैः समेतः ।
दन्तावुभौ यस्य च रागद्वे(द्वे)षौ यो रम्य आशाद्वय-
लोचनाभ्याम् ॥७०॥

एवंविधमनोगजमागच्छन्तमवलोक्य निजकरिणा जिनेन्द्रेण प्रतिस्खलितः । पश्चात् स्वकठिनसमभावमुद्गरेण निहत्य भूतले पातितः । ततो जिनघातहन्यमानो निजकरी यावद्भूतले पतितो दृष्टस्तावद्रतिहृदयं महाव्याकुलीभूतम् ।

अथ सा रतिर्या नास्या प्रबलाश्रुपातगद्गदवाचान्विता भूत्वा कामं प्रत्युवाच–भो नाथ, अद्यापि किं पश्यसि ? सकलसैन्यं भङ्गमागतम् । एको जीवशेष उद्धृतोऽसि त्वम् ।

ध्रुततरं गम्यते (साम्) । ततोऽनन्तरं कामसैन्यस्य भङ्गः कीदृशः प्रवर्त्तते तत् कथ्यते—

यावत् स्याद्भावभेरो या जिनसैन्ये प्रगर्जति ।
तावद्भङ्ग समायान्ति दर्शनाच्चाशु पंच वै ॥७१॥

तथा च—

यावत् पंच महाव्रतानि समरे धावन्ति पंचेन्द्रिया-
ण्यागच्छन्ति च तावदाशुविलयं यद्वत्तमो भास्करात् ।
यावच्छ्रोदशधर्मभूमिपतयो धावन्ति शीघ्रं रणे
तावत् कर्मचयो बिभेति च तथा सिंहाद्यथा कुंजरः॥७२॥
यावद्भावन्त्यभिमुखमलं तत्त्ववीराश्च ताव-
ज्जायन्ते ते चकितमनसः सप्त वीरा भयाख्याः ।
प्रायश्चित्तप्रवरसुभटाः सङ्गरे संचलन्तो
यावत्तावत् सभयमनसः शल्यवीरा द्रवन्ति ॥७३॥

तथा च—

जिनपतिदलमध्ये यावदाचारवीरः
प्रचलति किल तावत् कम्पते चास्रवाख्यः ।
अभिमुखमति यावद्धावतो धर्मशुक्लौ
द्रवत इति हि तावच्चार्त्तरौद्रप्रवीरौ ॥७४॥

❋ १४ कामका आह्वान सुनकर मोक्षनदके राजहंसस्वरूप, साधुपक्षियोंके लिए विश्रामाश्रय, मुक्तिवधूके पति, काम-सागरके मथनके लिए मन्दराचल, भव्यजन-कुल-कमल-विकासके लिए मार्त्तण्डस्वरूप, मोक्षद्वारके कपाट तोड़नेके लिए कुठार-स्वरूप, दुर्वार विषय-विषधरके लिए गरुड़के समान, साधु-सरोवरके विकासके लिए चन्द्रके तुल्य और मायाकरिणीके लिए मृगेन्द्रकी तरह जिनराजने

कामदेवसे कहा—अरे नीच काम, तू मेरी बाणाग्निमें पतङ्गकी तरह व्यर्थ ही क्यों झुलसना चाहता है? चल, चल यहाँसे।

जिनराजकी बात सुनकर कामदेवकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह कहने लगा—अरे जिनराज, क्या तुम्हें मेरा चरित्र याद नहीं है?

मेरे भयसे ही रुद्रने गङ्गाको लाँघा। मेरे भयसे ही जल समुद्रमें गया। मेरे भयसे ही इन्द्र स्वर्गमें गया और मेरे भयसे ही धरणेन्द्र अधोलोकमें गया।

मेरे भयसे ही सूर्य मेरुके निकट छिपा, और मेरे भयसे ही ब्रह्मा मेरा सेवक बना। इस प्रकार चराचर तीनों लोकमें मेरा कोई प्रतिभट नहीं है।

यह सुनकर जिनराज कहने लगे—अरे काम, तुम्हारी शूर-वीरता वृद्ध, गोपालक और पशुपतियोंतक ही चल सकती है। हम-जैसोंके ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। और हम-जैसा तो तुमने स्वप्नमें भी पराभूत नहीं किया होगा। फिर इतने पर भी यदि तुम मेरे साथ लड़नेकी क्षमता रखते हो तो आकर मेरा सामना करो।

यह सुनकर कामने मदोन्मत्त और दुर्जय रूपसे चिंघाड़ता हुआ मन-मातङ्ग जिनेन्द्रके ऊपर छोड़ दिया।

यह मन-मतङ्गज, उन्नत संसाररूपी शुण्डादण्ड, कषायरूपी चार चरण, राग-द्वेषरूपी दाँत और आशारूपी दो लोचनोंसे मनोहर था।

इस प्रकार मनोगजको आता हुआ देखकर जिनराजने अपने हाथोंसे उसे छेड़ दिया और तत्पश्चात् दृढ़ मुद्गरके प्रहारसे मारकर उसे भूतल पर गिरा दिया।

जब रतिने अपने हाथीको जिनके आघातसे आहत होकर पृथ्वीपर गिरते देखा तो उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसका मुख दीन पड़ गया और वह अश्रु गद्गद वाणीमें कामसे कहने लगी—स्वामिन्, आप अब भी क्या देख रहे हैं? सेनाका सर्वनाश हो चुका है। अकेले तुम ही बच रहे हो। इसलिए मेरी तो यही राय है कि अब हमें यहाँसे तुरन्त चल देना चाहिए। कामकी सेनाका जिस प्रकारसे विनाश हुआ उसे भी देख लीजिए :—

ज्योंही स्याद्वाद भेरीकी आवाज होनी शुरू हुई और जिन-राजकी सेना का गर्जन प्रारम्भ हुआ, कामकी सेनामें भगदड़ मच गई।

उस समय जिस प्रकार भास्करसे डरकर अन्धकार भाग जाता है, उसी प्रकार पाँच इन्द्रियाँ भी पाँच महाव्रतोंसे डरकर भयभीत हो गयीं। और जिस प्रकार सिंहसे हाथी भयभीत हो जाता है उसी प्रकार दश धर्मराजाओंके सामने कर्मवीर भी डर गये।

और जैसे ही तत्त्ववीर सामने आये, सात भय वीर मनमें चकित हो गये। तथा जैसे ही प्रायश्चित्त सुभटोंने प्रयाण किया, शल्य वीर भी सभयमन होकर रणसे भागने लगे।

और जिनराजकी सेनामें जैसे ही आचार वीरने प्रवेश किया, आश्रयवीर काँप गया। तथा धर्म और शुक्ल वीरके सामने आते ही आर्त और रौद्रवीर द्रवित हो उठे।

ॐ १५ एवंविधो मदनसैन्यस्य भङ्गो यावत् प्रवर्तते तावत्तस्मिन्नवसरेऽवधिज्ञाननामा वीरो जिनसकाशमागत्य प्रणम्योवाच—भो भो देव, लग्नमासन्नं सम्प्राप्तम्। किमनेन युद्धविस्त(स्ता)रेण? एतोऽयमेको मदन इहाधृतोऽस्ति। अन्यच्च, मोहोऽयं तावत् केवलज्ञानवीरघातैः क्षीणत्वं गतो-

ऽस्ति । तच्छीघ्रं द्वयोरेकेन सन्धानेन साधनं कुरु । एवम-वधिज्ञानवीरवचनमाकर्ण्य जिनेन्द्रेण मदनं प्रत्युक्तम्—रे कन्दर्प, दर्पः ? यं वहसि स्त्रीणां पुरतः स्वगृहमध्ये ?

अन्तःपुरस्य पुरतः पुरुषीभवन्तः
श्मश्रूणि मुखैः (हस्तैः) कति नोल्लिखन्ति ।
युद्धे तु तुङ्गकरिशोणितसिन्धुतीरे
वीरव्रती चरति वीरकराल एव ॥७५॥

तत्किमनेन क्षात्रेण ?

तदाकर्ण्यानङ्गेन मोहं प्रति प्रत्युभारब्धम्—हे सचिवेश, इदानीं किं क्रियते ? स चाह—भो देव, परीषहाख्या विद्या स्मर्यते, तत्त्वया(तव)तद्विद्याबलेनाभीष्टसिद्धिर्भवति । ततस्तेन सक्रोधमनसा रक्तध्यानेनाह्वानिता(आहूता)तत्क्षणात् सा द्वाविंशतिरूपैः सहिता 'देहि देह्यादेशम्' इति वदन्ती सम्प्राप्ता। ततो मदनेनोक्तम्—हे देवि, 'त्वया जिनो जेतव्यः । साहाय्य-मेतत् करणीयम् ।' एवमुक्त्वा जिनोपरि सम्प्रेषिता मदनेन ।

ततः सा निर्गता क्षुत्तरमसिधारोपमा नानाविधभा-वैर्भिन्दन्ती दंशमशकप्रभृतिभिरुपसर्गभेदैर्नानाविधिदुःखजनकैः सहिता परीषहाख्या विद्या जिनेन्द्रं रुणद्धि स्म । ततोऽनन्तरं जिनेन निर्जराख्या विद्या मनसि चिन्तिता । सा स्मरणमात्रेण सम्प्राप्ता । अथ तां निर्जरां दृष्ट्वा सा परीषहाख्या विद्या तत्क्षणात् पलायिता ।

* १५ इस प्रकार जैसे ही मदनकी सेनाका संहार प्रारम्भ हो गया, अवधिज्ञानवीर जिनराजके सामने आया और उन्हें प्रणाम करके निवेदन करने लगा—भगवन्, अब विवाह-वेला निकट आ गई

है। अतः आप अनावश्यक युद्धका विस्तार क्यों कर रहे हैं ? केवल काम ही ऐसा शेष रह गया है जिसको वश नहीं किया जा सका है। मोहको तो केवलज्ञानवीरके आघातोंने क्षीण ही कर दिया है। इसलिए आप शीघ्र ही ऐसा मार्ग स्वीकार कीजिए कि एक ही संधानसे सेनाका संहार हो जाय।

इस प्रकार अवधिज्ञानवीरकी बात सुनकर जिनेन्द्रका साहस और अधिक बढ़ गया और वे कामको इस प्रकार ललकारने लगे—अरे काम, घरके भीतर बैठ कर ही तुमने अपने स्त्रीसुलभ दर्पका प्रदर्शन किया है।

अन्तःपुरके सामने मूंछ ऐंठते हुए अपनेको पुरुष कहलाने वाले बहुत मिलेंगे। परन्तु जहाँ छिन्न हुए हाथियोंके खूनसे समुद्र लहरा उठता है, उस युद्धमें विरले वीर ही डटे रह पाते हैं।

अतः यदि साहस हो तो आओ, मुझसे सामना करो।

जिनराजको बात सुनकर मोह एकदम स्तब्ध रह गया। कुछ क्षणबाद उसने मोहसे मंत्र करना प्रारंभ कर दिया। वह मोहसे कहने लगा—सचिवोत्तम, बतलाइए, इस समय हमें क्या करना चाहिए। मोह कहने लगा—देव इस समय परीषह नामक विद्याका स्मरण कीजिए। उस विद्याके बलसे आपकी अवश्यमेव अभीष्ट सिद्धि होगी।

कामको मोहकी राय पसन्द आई। उसने क्रोधावेशमें तत्क्षण उस विद्याका आह्वान किया, जिसके कारण वह बाईस प्रकारका रूप धारण करके कामके सामने उपस्थित हो गयी। और उपस्थित होते-ही कामसे कहने लगी—देव, मुझे आदेश कीजिए, आपने किस प्रयोजनसे मुझे स्मरण किया है ?

काम कहने लगा—देवि, तुम्हें जिनराजको जीतना है। और जिनराजको पराजित करनेमें मेरी सहायता करनी है। इस प्रकार कहकर कामने उसे जिनराजके पास भेज दिया।

कामकी आज्ञा पातेही परीषह विद्या वहाँसे चल दी और तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण दंशमशक आदिके उपसर्गों और अनेक प्रकारके दुखद उपायोंसे जिनेन्द्रको कष्ट देने लगी।

जैसे ही परीषह विद्या जिनराजको कष्ट देनेके लिए उद्यत हुई उन्होंने निर्जरा विद्याका मनमें स्मरण किया। जिनराजके स्मरण करतेही वह उनकी सेवामें आ उपस्थित हुई और निर्जरा विद्याके आते ही परीषह विद्या तत्क्षण पलायन कर गयी।

*** १६ ततो मनःपर्ययेण जिनो विज्ञप्तः—देव, अद्यापि किं निरीक्ष्यसि(से)? विवाहसमयः सम्प्राप्तः। अन्यच्च, बलक्षीणमिमं मोहं न हन्सि चेत्तर्हि सिद्धिवराङ्गनापरिणयनं न भवति। उक्तं च यतः—**

"मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वे दोषाश्च विद्रुताः।
छिन्नमूलद्रुमा यद्वद् यथा सैन्यं नि(वि)नायकम्॥१६॥"
तदस्मिन् मोहे हते सति मदनोऽयं गमिष्यति।

तच्छ्रुत्वा जिनेन पंचशरं प्रति विहस्योक्तम्—अरे वराक मार, मा म्रियस्व। याहि याहि। युवतीजनगिरिगह्वरान्तरनिवासी भव।

तद्वचनमाकर्ण्य मोहेन कामं प्रत्युक्तम्—अहो देव, अधुनैवंविधेऽवसरे आत्मकुलदेवता आशिनी नाम विद्या संस्मर्यते (तां)त्वया। तस्या आशिन्याः प्रसादेन रणसागरोत्तरणं भविष्यति। तच्छ्रुत्वा मदनस्तथाविधं चकार। तद्यथा—

प्राप्ता चेतसि चिन्तिताऽद्भुततरं कामेन विद्याशिनी
द्वात्रिंशद्द्विजराक्षसैः परिवृता मद्युत्परा चण्डिका।

कुर्वन्ती भुवनत्रयस्य कवलं देवेन्द्रकम्पप्रदा
याऽस्यन्तच्छलपालकाद्भुतबला ब्रह्मादिकैर्दुर्जया।।७६।

एवंविधा सम्प्राप्य मदनाभिमुखा(खी)तस्थौ । ततस्ता-माशिनीमवलोक्य मुकुलितकरकमलो मदनो विनयालापैः प्रशंसयामास । तद्यथा–

जितलोकत्रया त्वंच त्वमचिन्त्यपराक्रमा ।
मानापमानदा त्वंच विद्या त्वं भुवनेश्वरी ।।७७।।
त्वं च ज्ञानवती......... ।
ब्राह्मी त्वं शब्दब्रह्मत्वाद्विश्वव्याप्ता च वैष्णवी ।।७८।।
प्राप्तासि सर्वभाषात्वं तस्मात् त्वं देवमातृका ।
पुष्टं स्यात्त्वयि भुक्तायामभुक्तायां जगत् कृशम् ।।७९।।
तस्मात्त्वं च जगन्माता सकलानन्ददायिनी ।
निघण्टुनाटकच्छन्दस्तर्कव्याकरणानि च ।।८०।।
इत्याद्यं त्वद्यतो जातं तस्मात्त्वं श्रुतदेवता ।
त्वं पद्या स्याद (स्या ह्य)जन्मत्वात्त्वमेका हि जगत्प्रिया ।।८१।।
एवं बहुभिः(बहु)प्रकारैः स्तोत्रैः स्तुत्वा जगत्प्रिया(याम्) ।
इति श्रुत्वा च सन्तुष्टा प्रोवाचेति तमाशिनी ।।८२।।

हे मदन, पूर्य्यताम् । ममाह्वाने किं कार्यं तत्कथय ।

ततः स्मरो जगाद–हे परमेश्वरि, अनेन ममाखिलं सैन्य भङ्गमानीतम् । तस्मात्तव स्मरणं कृतम् । अधुना येन केनोपायेन मां रक्षसि चेत्तदहं जीवामि, नान्यथा । यतस्तव जयेन जयवानहं तव पराजयेन पराजयं गमिष्यामि । एवं तस्य

वचनमाकर्ण्य जिनसम्मुखं धावन्ती निर्गता साऽऽशिनी भक्ष्या-भक्ष्यं भक्षयन्ती सागरनदीसरित्तडागादि शोषयन्ती ।

एवमागच्छन्ती यावज्जिनेन दृष्टा तावद्यथाकर्ममार्गण-विद्धा परं नास्थिरा भवति । ततो भूयोऽपि जिनेन नाना-न्तरायषष्ठभुक्तषष्ठचान्द्रायणकस्थानप्रभृतिभिर्बाणसमूहैर्विद्धा, परन्तु दुर्द्धरा जिनाभिमुखं सम्प्राप्याऽब्रवीत्—हे जिन, त्यज गर्वम्, मया सह सङ्ग्रामं कुरु ।

ततो जिनेश्वरेणोक्तम्—हे आशिनि, त्वया सह सङ्ग्रामं कुर्वन् लज्जेऽहम् । यतः शूरतरा ये क्षत्रिया भवन्ति ते स्त्रीभिः सह सङ्ग्रामं न कुर्वन्ति । इति श्रवणमात्राद्भूत-लाद् गगनपर्यन्तं प्रसारितवदना विकटदंष्ट्राकराला भैरवरूपं धृत्वाऽट्टहासं मुञ्चन्ती जिननिकटा संजाता । ततस्तेन जिनेनै-कान्तरत्रिरात्राष्टोपवासरसपरित्यागपक्षमाससंवत्सरवर्षोपवास - प्रभृतिभिर्बाणजालैर्विद्धा भूतले पतिता ।

ततस्तां पतितामाशिनीमवलोक्य मोहेन मदनं प्रत्युक्तम्—भो देव, अद्यापि किं निरीक्षयसि(से) । यस्या आशिन्या बलेन स्थातव्यं साऽऽशिनी पातिता । अन्यच्च स्वातीगतशुक्राम्बु-वृष्टिरिव जिननाथस्य बाणवर्षा(र्षो)न स्थिरा(रो)दृश्यते । तर्हि त्वं निर्गच्छ । क्षणमेकमहं भवदर्थे यथाशक्त्या(क्ति)जिन-सैन्येन सह योत्स्ये । यथान्तरं किंचित्तव भवति । एवं मोह-वचनमाकर्ण्य संवराबलमार्गणप्रहृताङ्गोऽनङ्गो धैर्यं धर्तुं न शक्नोति यदा, तदा निर्गतः । तद्यथा—

चण्डानिलेन प्रहतो यथाम्बुदो विनिर्गतः सिंहभयाद्यथा गजः ।
तमो यथा भानुकरैर्विमर्दितं तथा स्मरो भूरिशरैः कदर्थितः ॥८३॥

* १६ तदुपरान्त मनःपर्ययज्ञान वीर जिनराजके पास आया और उनसे निवेदन करने लगा—भगवन्, अब आप क्या प्रतीक्षा कर रहे हैं ? विवाहका समय आ गया है। अभी आपको क्षीणशक्ति मोहका भी समूल उन्मूलन करना है। जब तक आप मोहका विनाश नहीं करेंगे, आपका मुक्ति कन्याके साथ पाणिग्रहण होना कठिन है। फिर मोह भी साधारण सुभट नहीं है। कहा भी है :—

"जिस प्रकार सेनापतिके नष्ट हो जानेके बाद सेना नष्ट हो जाती है और जड़ कट जानेपर वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मोह कर्मके नाश हो जानेपर समस्त बाधाएं भी विलीन हो जाती हैं।"

दूसरे मोहके आहत होनेपर काम स्वयमेव भाग जायगा।

मनःपर्ययवीरकी बात सुनकर जिनराजने कामदेवसे कुछ स्मितके साथ कहा—अरे वराक काम, चल यहाँ से। मरना क्यों चाहता है ? स्त्री-रूपी गिरि-कन्दराओंमें जाकर अपने प्राण बचा। अन्यथा तुझे अभी समाप्त किये देता हूँ।

जिनराजकी बात सुनकर कामको बड़ा विस्मय हुआ। उसने अपने प्रधानमन्त्री मोहसे इस सम्बन्धमें परामर्श किया तो मोह कहने लगा—इस समय आपको अपनी कुलदेवी दिव्याशिनी विद्याका स्मरण करना चाहिए। उसीके प्रसादसे आप इस रण-सागरसे पार हो सकेंगे।

मोहकी बात कामको जँच गई। उसने ऐसा ही किया और दिव्याशिनी इस प्रकारके वेषमें तत्काल आकर उपस्थित हो गयी:—

यह दिव्याशिनी बत्तीस द्विज-राक्षसोंसे वेष्टित थी, चण्डीके समान भयङ्कर और तीनों लोकको भक्षण करती हुई-सी प्रतीत हो रही थी। देवेन्द्रको भी कंपा देनेवाली थी। अद्भुत बलशाली, अत्यन्त छलमय और ब्रह्मा आदिसे भी दुर्जय थी।

इस प्रकार कामके स्मरण करते ही दिव्याशिनी आकर कामके सामने उपस्थित हो गयी। जैसे ही कामने दिव्याशिनीको अपने सामने उपस्थित देखा, वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और अनेक स्तुति-वचनोंसे उसकी निम्न प्रकार प्रशंसा करने लगा—

हे देवि, तुमने तीनों लोक जीत लिये हैं। तुम्हारा पराक्रम अचिन्त्य है। तुम मान और अपमान करनेमें दक्ष हो और तुम असाधारण भुवनेश्वरी विद्या हो। तुम ज्ञानवती हो। शब्दब्रह्म होनेसे ब्राह्मी हो। और विश्वमें व्याप्त हो। वैष्णवी हो। सर्वभाषामय होनेसे देवमातृका हो। तुम्हारे भोजन करनेपर जगत् पुष्ट रहता है और भूखे रहनेसे कृश। अतः तुम जगत्की माता हो। तुमसे सबको आनन्द मिलता है। निघन्टु, नाटक, छन्द, तर्क और व्याकरण आदि तुम्हींसे उत्पन्न हुए हैं। अतः तुम कुलदेवता हो। तुम अजन्मा हो और पद्मा हो। तुम एक हो और जगत्को प्यारी हो।

इस प्रकार कामने जब दिव्याशिनीकी विविध भाँति स्तुति की तो वह भी इसके ऊपर प्रसन्न हो गई और कामसे कहने लगी– काम, कहो, तुमने मुझे किस लिए स्मरण किया है ?

काम कहने लगा—देवि, जिनराजने हमारी समस्त सेनाका संहार कर डाला है। इसलिए यदि इस समय तुमने मुझे किसी प्रकारसे बचा लिया तो ही मैं जीवित रह सकता हूँ। मेरी प्राण-रक्षाका अन्य कोई उपाय मुझे नजर नहीं आ रहा है। अब आपहीकी जयसे मैं जयवाला और आपहीकी पराजयसे मैं पराजित समझा जाऊँगा।

जब काम दिव्याशिनीके सामने इस प्रकारसे विनत हुआ और दिव्याशनीने उसकी तथोक्त दीनदशा देखी और आर्त्त-वाणी सुनी तो वह अनेक अभक्ष्य पदार्थोंको भखती हुई और मार्गवर्ती अनेक सागर,

नदी-नद और तड़ाग आदिको सुखाती हुई तत्क्षण जिनराजके पास दौड़ती हुई पहुँची।

जिनराजने जैसे ही दिव्याशिनीको आते हुए देखा, उसने अधः कर्म बाणोंसे उसपर प्रहार किया। पर इतने पर भी उसके आक्रमणका वेग अवरुद्ध नहीं हुआ। अतः इस बार जिनराजने प्रबल प्रतिरोधक चान्द्रायण प्रभृति बाण-समूहोंकी उसपर वर्षा की। परन्तु यह बाण-वर्षाभी व्यर्थ सिद्ध हुई। इसके विपरीत दिव्याशिनी क्रुद्ध वेषमें सामने आई और कहने लगी—जिनराज, तुम अभिमान छोड़ दो और मेरे साथ संग्राम करो। उत्तरमें जिनराज कहने लगे—दिव्याशिनी, तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें हमें लाज लगती है। क्योंकि क्षत्रिय स्त्रियोंके साथ युद्ध नहीं करते।

जिनराजके इस प्रकार कहते ही दिव्याशिनीने अपना मुँह धरतीसे लेकर आसमान तक फैला लिया, अपनी विकराल दाढ़ोंको बाहर निकाल लिया और भयंकर वेष बनाकर अट्टाहास करती हुई जिनराजके और निकट पहुँच गयी।

तदुपरान्त जिनराजने एकान्तर, तेला, आठ दिनके उपवास, रसपरित्याग, पक्ष, मास, ऋतु अयन, और वर्षके उपवास आदि बाणजालोंसे उसे छेद दिया और वह भूतलपर जा गिरी।

जब मोहने देखा कि जिनराजने दिव्यशिनीको भी भूतलपर गिरा दिया है तो वह जाकर कामसे कहने लगा—देव, अब भी आप क्या देख रहे हैं। जिस दिव्याशिनीके बलपर आप साहस धारण किए थे वह भी युद्धमें गिरादी गयी है। और स्वाति नक्षत्रमें होनेवाली निर्मल जल-वृष्टीकी तरह जिनराजकी बाण-वर्षा अब भी अविराम हो रही है। इसलिए इस समय आप तो यहाँसे चले जाइए। मैं एक क्षणतक आपकी खातिर जिनराजकी सेनासे लड़ूँगा। कदाचित मेरे संग्रामसे आपका हित साधन हो सके।

कामदेव असंख्य मन-बाणोंसे आहत होकर अधीर हो ही रहा था इसलिए जैसे ही मोहने संग्राम भूमिसे भाग जानेका उसे परामर्श दिया वह तुरन्त ही वहाँसे चल पड़ा।

जिस प्रकार प्रचण्ड पवनसे आहत मेघ खण्ड-खण्ड होकर उड़ जाता है, सिंहके भयसे हाथी भाग जाता है और सूर्य-किरणोंसे विमर्दित अन्धकार विलीन हो जाता है—उसी प्रकार जिनराजकी बाण-वर्षासे आहत काम भी संग्राम-भूमिसे भाग निकला।

*** १७ अथ निर्गते मदने क्षीणाङ्गो मोहः पवनप्रहताभ्रमिव जिनसैन्यं क्षणमेकं प्रतिस्खलितवान्। ततो जिनेनोक्तम्—अरे मोह वराक, गच्छ गच्छ। किं वृथा मर्तुमिच्छसि? एतद्वाक्यं मोह आह—हे जिन, किमेवं वदसि? पुरा मया सह सङ्ग्रामं कुरु। यतो मयि जीविते स्थिते मदनोऽयं केन जेतव्यः? अन्यच्च, स्वाम्यर्थे भृत्येन प्राणत्यागः कर्त्तव्यो न पलायनम्। उक्तं च—**

"जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि सुराङ्गनाः।
क्षणविध्वंसिनी(नः)काया(याः)का चिन्ता मरणे रणे ॥१७॥"

तथा च—

"स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत् प्राणान् भृत्यो भक्तिसमन्वितः।
लोके कीर्त्तिर्यशस्तस्य परत्रे चोत्तमा गतिः ॥१८॥"

अन्यच्च—

"स्वाम्यर्थे ब्राह्मणार्थे च गवार्थे स्त्रीकृतेऽथवा।
स्थानार्थे यस्त्यजेत् प्राणांस्तस्य लोकः सनातनः ॥१९॥"

एवं तयोर्जिनमोहयोर्यावद्वचनविवादः परस्परं वर्त्तते तावद्धर्मध्यानेन(नः)समरक्रुद्धेनाग्रतः (क्रुद्धोऽग्रतः) स्थित्वा

मोहमल्लं चतुर्भेदबाणैर्हत्वा भूतले शतखण्डमकार्षीत् । ततो-ऽनन्तरं ससैन्यो जिननाथो धावन् मदनस्य पृष्ठतो लग्नः । ततः ससैन्यं जिनपतिमागच्छन्तं यावद् दूरस्थमवलोक्य (कयति)तावन्मदनो महाव्याकुलोऽभूत् । अथ तस्य मदनस्य तस्मिन्नवसरे न चात्मकलत्रस्य संस्मरणम, न च शरचापादी-नाम्, न चाश्वरथगजपदातीनाम् । एवंविधः शुष्कास्यो मुक्त-केशो यावन्न पश्यति, तावच्छीघ्रमाकर्ण्य जिनेशं मदनं प्रधारितवान्—रे रे मदन, अद्य पलाय्य त्वं कस्या मातुर्जठरे प्रविशसि ? अन्यच्च, त्वमेवं वदसि—"मया को न जितो लोके ?" एवमुक्त्वा अर्धचन्द्रबाणं शरासने सन्धित्वा (सन्धाय)वक्षःस्थले विद्धो मूर्च्छां प्रपन्नः पतितः । तद्यथा—

मरुद्धतो वै पतति द्रुमो यथा खगेन्द्रपक्षप्रहतो यथोरगः ।
सुरेन्द्रवज्रेण हतो यथाऽचलस्तथा मनोभूः पतितो विराजते ॥८४॥

ततस्तत्क्षणात् सर्वतो यावत्सैन्येनावेष्टितस्तावत्तस्मिन्न-वसरे मदनः श्लोकमेकमपठत् । तद्यथा—

पूर्वजन्मकृतकर्मणः फलं पाकमेति नियमेन देहिनाम् ।
नीतिशास्त्रनिपुणा वदन्ति यद् दृश्यते तदधुनाऽत्र सत्यवत् ॥८५॥

※ १७ जब कामदेव रण-स्थलीसे भाग खड़ा हुआ तो क्षीण-काय मोह जिनराजकी सेनाका सामना करने लगा, लेकिन क्षीण शक्ति होनेके कारण उसे पदे पदे स्खलित होना पड़ा । अतः जिनराज-ने उससे कहा—अरे बराक मोह, भाग यहाँसे । व्यर्थमें क्यों मरना चाहता है ?

जिनराजकी बात सुनकर मोह कहने लगा—अरे जिन, आप यह क्या कह रहे हैं ? पहले मेरे साथ तो लड़ लो। जब तक मैं जीवित हूँ, कामको कौन जीत सकता है ? फिर स्वामीके लिए अगर मुझे अपने प्राणोंकी बलि भी देनी पड़े तो मैं कर्त्तव्य समझकर उसे देनेके लिए सहर्ष तैयार हूँ। रणसे भाग जाना अनुचरका कर्तव्य नहीं है। कहा भी है :—

"युद्धमें विजयी होनेपर लक्ष्मी मिलती है। मरनेपर देवाङ्गनाएँ मिलती हैं। माया तो क्षणभरमें विलीन हो जानेवाली है। फिर रणमें मर जानेकी कौन चिन्ता ?" तथा—

"जो भृत्य भक्तिके साथ स्वामीके लिए प्राण-परित्याग करता है, उसे इस लोकमें कीर्त्ति और यश मिलता है तथा परलोकमें उत्तम गति।" इस सम्बन्धमें और भी कहा है :—

"जो व्यक्ति स्वामीके लिए, ब्राह्मणके लिए, गायके लिए, स्त्रीके लिए और स्थानके लिए प्राणोंका परित्याग करता है उसे परलोकमें सदैव सुख मिलता है।"

इस प्रकार जिस समय जिनराज और मोहका इस तरह परस्परमें रणसम्बन्धी विवाद चल रहा था, धर्मध्यान क्रुद्ध होकर आ उपस्थित हुआ और चार प्रकारके बाणोंसे मोहको आहत करके उसे शतखण्डोंके रूपमें पृथिवीपर बिखरा दिया।

तदनन्तर जिनराजने अपनी सेना लेकर काम का पीछा किया। जब कामने सेनासहित जिनराजको अपना पीछा करते हुए देखा तो वह अत्यन्त व्याकुल हो गया। उस समय उसे न अपनी सुध रही, न स्त्रीकी, न धनुष-बाणकी और न ही अश्व, रथ, हाथी और पदातियोंकी ही इसके विपरीत उस समय उसे भागनेके सिवाय और कुछ सूझ ही न पड़ा और फलतः उसने भागना शुरू कर दिया। इतनेमें,

जब तक शुक्लध्यान वीर इस दृश्यको नहीं देखता है, तब तक जिन-राज शीघ्र ही कामके निकट आकर कहने लगे—अरे काम, अब भागकर तू कहाँ जा रहा है ? क्या फिरसे अपनी माँके उदरमें प्रवेश करना चाहता है ? तुम जो कहते थे कि मैंने संसारमें किसे पराजित नहीं किया है, सो यदि तुममें हिम्मत हो तो मेरा सामना करो। इतना कहकर जिनराजने धर्मबाणावली को धनुषपर चढ़ाकर कामके वक्ष-स्थलमें इस प्रकारसे प्रहार किया कि वह आहत होकर जमीन पर गिर पड़ा।

जिस प्रकार वायु वृक्षको उखाड़कर गिरा देती है, साँप गरुड़के पंखोंसे आहत होकर गिर पड़ता है और पर्वत इन्द्रके वज्र-प्रहारसे गिर जाता है उसी प्रकार काम जिनराजकी बाणावलीसे आहत होकर गिर पड़ा।

कामके भूतलपर गिरते ही जिनराजकी सेनाने उसे आ घेरा और बाँध लिया। इस प्रकारकी अवस्थामें पड़े हुए कामको निम्न-लिखित पद्य की स्मृति सजग हो उठी—

"पूर्वजन्मकृतकर्मणः फलं पाकमेति नियमेन देहिनाम्।
नीतिशास्त्रनिपुणा वदन्ति यद् दृश्यते तदधुनाऽत्र सत्यवत्।"

'नीतिकारोंने जो उपदेश दिया है कि पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका फल देहधारियों को अवश्य भोगना पड़ता है, वह आज खुले रूप में सामने आ गया है।"

*** १८ ततस्तत्रैके वदन्त्येवम्—"अयमधमो बध्यते (ताम्)।" एके वदन्ति—"गर्दभारोहणं शिरोवपनमस्य च कर्त्तव्यम्।" एके वदन्ति—"चारित्रपुरबाह्ये प्रदेशे शूलारोहण-मस्य क्रियते(ताम्)।" एवमादि सकलसामन्तवीरक्षत्रियाः**

प्रहृष्टमनसो यावत् परस्परं भवन्ति तावत्तस्मिन्नवसरे रति-प्रीत्यौ(तौ)जिनेन्द्रं प्रति विज्ञापनां कृतवत्यौ । तद्यथा—

भो धर्माम्बुद हे कृपाजलनिधे हे मुक्तिलक्ष्मीपते
भो भव्याम्बुजराज(जि)रंजनरवे सर्वार्थचिन्तामणे ।
भो चारित्रपुराधिनाथ भगवन् हे देव देव प्रभो
वैधव्यं कुरु माऽऽवयोः करुणया त्वं दीननाथ प्रभो।८६।

अन्यच्च—

लोकेऽस्मिन्निवमन्त्रणं साधु रक्षो(क्ष्यो)हि दुर्जनो वध्यः।
एवं त्वयाऽपि कार्यं यदि हे जिन तत् किमाश्चर्यम् ।८७।
तस्मा मारय मारं दीयिणमत्येनमावयोर्नाथम् ।
किं ते पौरुषमस्मिन् प्रहृते ज्ञेयं च हे देव ।।८८।।

अपरम्—

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ।।८९।।
नानाविधैः प्रकारैः (—रुपायैः) शिक्षित एषः स्मरः
पुराऽऽवाभ्याम् ।
तत्फलमनेन दृष्टं तदिदानीं रक्ष रक्ष भो देव ।।९०।।

एवं तयोर्विज्ञाप्यवचनं श्रुत्वा जिनेन्द्रेणोक्तम्—हे रति-प्रीत्यौ(तौ), भवत्योः किमनेन बहुप्रोक्तेन ? दुष्टमिममधमं तर्हि न मारयामि यदि देशत्यागं प्रकरिष्यति ।

तच्छ्रुत्वा ताभ्यामुक्तम्—देव, तवादेशं(शः) प्रमाणम् । परन्तु देवेन किंचिन्मर्यादामात्रं कथनीयम् । तदाकर्ण्य जिनेन्द्रो विहस्योवाच—तदनेनाधमेनास्मद्देशस्य सीमा कदापि काले न लङ्घनीया । ततो भूयोऽपि रतिप्रीतिभ्यामुक्तम्—तद्देवेन

शीघ्रं स्वदेशसीमा कथ्यते(ताम्) । ततो जिनेन दर्शनवीर-गणकमुख्यमाहूयाभिहितम्—अरे दर्शनवीर, मदनस्य देशपट्टदानार्थं स्वदेशसीमापत्रं विलिख्य समर्पय ।

तदाकर्ण्य स दर्शनवीरः स्वदेशसीमापत्रं लिलेख । तद्यथा—

"शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्राराऽऽनतप्राणताऽऽरणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयंतापराजितसर्वार्थसिद्धिशिलापर्यन्तेषु देशेषु मदनश्चेत्प्रविशति तदवश्यं बन्धनीयः" इति विलिख्य श्रीकारचतुष्टयसहितं सीमापत्रं रतिहस्ते दत्तम् ।

* १८ जब काम जिनराजसे पराजित हो गया तो सेनाके कतिपय सुभट कामके सम्बन्धमें इस प्रकार मन्त्रणा करने लगे—यह अधम है, इसे मार डालना चाहिए । कुछ कहने लगे—इसका सिर मूंडकर और गधेपर बिठाकर इसे निकाल देना चाहिए । और कुछ सुभट कहने लगे—इसे चारित्रपुरसे बाहर ले जाकर शूलीपर चढ़ा देना चाहिए । इस प्रकार जब समस्त सामन्त परस्परमें इस प्रकारसे वार्तालाप कर रहे थे उस समय रति और प्रीति कामके दुखद समाचारसे दुखित होकर जिनराजके पास आयीं और इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं :—

हे धर्माम्बुद, हे करुणासागर, हे मुक्तिलक्ष्मीपति, हे भव्यरूपी कमलोंके लिए सूर्य, हे सर्वार्थचिन्तामणि, हे चारित्रपुरके अधिपति—भगवन् जिनराज, आप हमपर करुणा कीजिए और कामदेवको जीवित छोड़कर हमारा सौभाग्य अचल कीजिए । हे प्रभो आप दीनानाथ हैं, इसलिए हम लोगोंकी प्रार्थना पर अवश्यमेव ध्यान दीजिए । यद्यपि संसारमें यह दण्ड-विधान सुप्रसिद्ध है कि सत्पुरुषकी सब तरहसे रक्षा होनी चाहिए और दुर्जनको दण्ड दिया जाना

चाहिए। हे जिनराज, यदि इस पद्धतिका आप भी अवलम्ब लें तो कोई आश्चर्य नहीं है।

हे नाथ, हमारे पतिने आपका महान् अपराध किया है। फिर भी आप उन्हें मृत्युदण्ड न दीजिए; क्योंकि इस प्रकारसे क्षीणशक्ति प्राणनाथको मारनेमें आपका क्या पौरुष है ? और—

जो उपकारियोंके प्रति सौजन्य दिखलाता है उसके सौजन्यसे क्या लाभ ? वास्तविक सौजन्य तो उसका है, जो अपकारियोंके प्रति सद्व्यवहार करता है।

फिर भगवन्, हम लोगोंने इन्हें अनेक प्रकारसे समझाया भी था, लेकिन इन्होंने कुछ नहीं सुना। और यही कारण है कि यह अपने कर्मोंका इस प्रकारसे फल भोग रहे हैं। फिर भी देव, आपको तो रक्षा ही करनी है।

रति और प्रीतिकी जिनराजने यह प्रार्थना सुनी और कहने लगे—आप इस प्रकारसे अधिक निवेदन क्यों कर रही हैं ? यदि यह पापात्मा देशत्याग कर दे तो मैं इसे नहीं मारूँगा।

जिनराजकी बात सुनकर रति और प्रीति कहने लगीं—देव, हमें आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन आप कुछ मर्यादा का निर्देश तो कर दीजिए। यह सुनकर जिनराज हँसकर कहने लगे—यदि यह बात है तो कामको हमारे देशकी सीमाका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

रति-प्रीति फिरसे कहने लगीं—देव, आप कृपाकर अपने देश-की सीमा बतला दीजिए, फिर उसका उल्लंघन न होगा।

रति-प्रीतिकी बात सुनकर जिनराजने दर्शनवीर आदिको बुलाकर कहा—अरे दर्शनवीर, मदनको देशपट्ट देनेके लिए अपने

देशकी सीमा बतलाते हुए उसे एक सीमा-पत्र दे दो, जिससे वह इस निर्धारित सीमाके भीतर कदापि प्रवेश न करे।

जिनराजकी आज्ञानुसार दर्शनवीरने इस प्रकारसे सीमा-पत्र लिखना प्रारम्भ कर दिया :—

'शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत, नव ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि तथा सिद्धशिला पर्यन्त के प्रदेशोंमें यदि मदनने प्रवेश किया तो इसे अवश्य ही मृत्यु-दण्ड दिया जायगा।' इस प्रकार श्रीकार-चतुष्टयके साथ सीमा-पत्र लिखकर रतिके हाथमें दे दिया।

* १६ ततोऽनन्तरं भूयोऽपि रतिप्रीत्यौ (तौ) जिनेन्द्रं प्रति विज्ञापयाञ्चक्रतुः—देव, तदधुना कतिपयीं भूमिं यथाऽस्मान्नयति तथाविधसहचरो दातव्यो भवद्भिः। तच्छ्रुत्वा जिनेन्द्रः सकलास्वसुभटानामाह्वाननं (ह्वानं) चकार। तद्यथा—

धर्माचारदमाः क्षमानयतपोमुण्डाङ्गतत्त्वक्रियाः
प्रायश्चित्तसमतिश्रुतावधिमनःपर्यायशीलाक्षकाः।
निर्वेगोपशमौ सुलक्षणभटाः इष्टाभिधा (?) संयमाः
स्वाध्यायाभिधब्रह्मचर्यसुभटा द्वौ धर्मशुक्लाभिधौ ।९१।
गुप्तिर्मूलगुणा महागुणभटाः सम्यक्त्वनिर्ग्रन्थकाः
पूर्वाङ्गाभिधकेवलप्रभृतयो येऽन्येऽपि सर्वे भटाः।
तानाहूय जिनो बभाण भवतां मध्ये हि को यास्यति
प्रद्युम्नं कियदन्तरं कथयत प्रस्थापनार्थं पुमान् ? ।९२।

तदाकर्ण्य ते सर्वे न किंचिद् ब्रुवन्तः स्थिताः, तदा जिनेन्द्रः पुनरभाषत—अहो, कस्माद्यूयं मौनेन स्थिताः ? किमर्थमेतस्य (स्माद्) युष्माकं मनसि भीतिर्वर्त्तते ? अयं तावन्म-

दमो मया त्यक्तदर्पः कृतोऽस्ति। तत्कथं वो भयकारणम् ?
अन्यच्च—

विषहीनो यथा सर्पो दन्तहीनो यथा गजः।
नखैर्विरहितः सिंहः सैन्यहीनो यथा नृपः ॥६३॥
शस्त्रहीनो यथा शूरो गतदंष्ट्रो यथा किटिः।
नेत्रहीनो यथा व्याघ्रो गुणहीनं यथा धनुः ॥६४॥
शृङ्गं विनेव महिषो निकण्डुरिव शूकरः।
तथाऽयमस्ति पंचेषुगंतशौर्यबलायुधः ॥६५॥
(सन्दानितकम्)

एवं जिनवचनमाकर्ण्य तत्र शुक्लध्यानवीरोऽवादीत्—देव, यास्याम्यहम्। ममादेशं देहि। परं किञ्चिद्‌गुणिष्यामि तदवधारय। त्वं तावत्सर्वज्ञाख्योऽसि। सर्वं जानासि। तत्कथमस्य पापस्य वैरिणः सहचरो दीयते ? कोऽयं हेतुः ? किं न मारयसि ?

अथ सर्वज्ञो बभाषे—अरे शुक्लध्यानवीर, शृणु—"शरणागतमपि वैरिणं न हन्यते (हन्ति)" इति राजधर्मः। यत उक्तं च -

"किं पाणिना परधनग्रहणोद्यतेन
किं पाणिना परवधूस्तनलम्पटेन ?
किं पाणिना गलगृहीतधनीपकेन
किं पाणिना शरणसंस्थितघातकेन ? ॥२०॥"

अन्यच्च, यदभीष्टं तदस्माकं सिद्धम्। तदमुना किमनेन हतेन प्रयोजनम् ?

* १९ इसके पश्चात् रति-प्रीतिने जिनराजसे पुनः निवेदन किया—महाराज, आप हमें ऐसा सहचर दीजिए जो कुछ दूरतक हम लोगोंको पहुँचा आवे। क्योंकि आपके वीरोंसे हमें बहुत डर लग रहा है।

यह सुनकर जिनेन्द्रने धर्म, आचार, दम, क्षमा, नय, तप, सत्य, कृपा, प्रायश्चित्त, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, शील, निर्वेग, उपशम, सुलक्षण, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, धर्म, शुक्ल, गुप्ति, मूलगुण सम्यक्त्व, निर्ग्रन्थत्व, पूर्वाङ्ग और केवलज्ञान आदि जितने वीर थे उन सबको बुलाया, और बुलाकर कहने लगे—आप लोगोंमें इस प्रकारका कौन वीर है जो कामको कुछ दूरतक भेजनेके लिए उसके साथ जा सकता है ?

जिनराजकी यह बात सुनकर जब किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया तो जिनराज फिर कहने लगे—आप लोग चुप क्यों रह गये हैं ? आप कामसे क्यों डरते हैं ? मैंने इसका दर्प क्षीण कर दिया है। अतः अब भयका कोई कारण नहीं है। और कामदेव इस समय तो विषहीन साँपकी तरह, दाँतरहित हाथीकी तरह, नखशून्य सिंहकी तरह, सैन्यहीन राजाकी तरह, शस्त्रहीन शूरकी तरह, दन्तरहित वराहकी तरह, नेत्रहीन व्याघ्रकी तरह, गुणहीन धनुषकी तरह, शृङ्ग-शून्य भैंसेकी तरह और दाढ़हीन वराहकी तरह क्षीणबल हो गया है।

इस प्रकार जिनराजकी बात सुनकर शुक्लध्यानवीर कहने लगा—देव मुझे आज्ञा दीजिए। मैं जानेके लिए तैयार हूँ। लेकिन एक निवेदन करना है, जिसपर आपको अवश्य ही ध्यान देना चाहिए। मेरा यह निवेदन है और आप स्वयं सर्वज्ञ होनेसे जिसे जानते भी हैं कि काम अत्यन्त पापात्मा और वैरी है। यह कदापि अपना स्वभाव छोड़नेवाला नहीं है। इसलिए आप इसे मार क्यों नहीं डालते ?

सहचर भेजकर इसको प्राणदानके साथ ही इसकी दूषित वृत्तियोंको प्रोत्साहन क्यों दे रहे हैं।

शुक्लध्यानवीरकी बात सुनकर जिनराज कहने लगे—शुक्लध्यानवीर, कामको हमें इस समय नहीं मारना चाहिए, क्योंकि यह राज धर्म है कि कोई शरणागत वैरीको भी मृत्यु दण्ड न दे।

नीतिकारोंने कहा भी है :—

"वह हाथ किस कामका जो दूसरेका धन छुए, परस्त्रीके स्तनका लम्पट हो, याचकोंके गलेमें धक्का देकर उन्हें बाहर करे और शरणागतका वध करे।"

फिर हमारा प्रयोजन सिद्ध हो ही चुका है। अब इसके मारनेसे क्या लाभ ?

*** २० ततो रतिरुवाच—देव, शुक्लध्यानवीरोऽयं शुभतरां विज्ञप्तिकां करोति। एवंविधोऽयमस्मान् यदि मारयितुं शक्नोति, कोऽत्र सन्देहः ? यतस्तादृशी शक्तिरस्य शुक्लध्यानवीरस्य दृश्यते। उक्तं च—**

"आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥२१॥"

तदाकर्ण्य जिनेन्द्रो विहस्य प्राह—हे रते, मा भैषीः। न भविष्यत्येवम्। किमयं शुक्लध्यानवीरो मम वचनमुल्लङ्घ्य युष्मान् हनिष्यति ? एवमुक्त्वा रतिप्रीतिभ्यां सह शुक्लध्यानवीरं प्रस्थापयामास।

ततोऽनन्तरं मदनसकाशमागत्य रतिप्रीतिभ्यां वचनमेतदभिहितम्—भो नाथ, भवदर्थं नानाविज्ञापनवचनैरावाभ्यां जिननाथो विज्ञप्तः। अन्यच्च—देव, तव मरणमवश्यं प्राप्तम-

ध्यावयाः कृपावचनरचनया न प्राप्तम् । तदधुना जिनेन दर्शनवीरसकाशात् विलिख्य स्वदेशसीमापत्रं दत्तम् । एतद् गृहाण । अतो जिनदेशसीमां विहाय युष्माभिरन्यत्र सुखेन स्थातव्यम् । दैवेन विपरीतेन किं कर्तुं शक्यते ? अन्यच्च, कतिपयभूमिपर्यन्तं शुक्लध्यानवीरः सहचरः प्रहितोऽस्ति । तदधुना किं न गम्यते ?

एवं वचनमात्रश्रवणात्पंचेषुणा निजमनसि चिन्तितम्—अहो, इदानीं किं कर्त्तव्यम् ? शुक्लध्यानवीरः सहचरः शुभकरोऽस्माकं न भवति । यतोऽनेन शुक्लध्यानवीरेण दृष्टोऽहं चेत् तदवश्यं प्रहरिष्यति । तदकोऽस्य शुक्लध्यानवीरस्य विश्वासः ? उक्तं च—

"न बद्धयन्ते ह्यविश्वस्था(स्ता) दुर्बला बलवत्तरैः ।
विश्वस्था(स्ता)श्चाशु बद्धयन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः।२२।"

एवं चिन्तयित्वा सप्ताङ्गानि परित्यज्यानङ्गो भूत्वा निर्गतो युवतीजनगिरिकपाटं निविष्टः । अथ तस्मिन्नवसरे शचीपतिना ब्रह्माणं प्रत्युक्तम्—ब्रह्मन्, पश्य पश्य मदनेनातिहारितम् ।

इति श्री ठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिन(नाग)देवविरचिते
सुसंस्कृतबन्धे स्मरपराजयेऽनङ्गभङ्गो नाम
चतुर्थः परिच्छेदः ।।४।।

※ २० रति शुक्लध्यानवीरकी बात सुन रही थी । वह जिनराजसे कहने लगी—भगवन्, शुक्लध्यानवीरका आशय हमें शुभ नहीं मालूम देता । कौन जाने, कदाचित् वह हमलोगोंको रास्तेमें ही समाप्त कर दे । शुक्लध्यानवीरकी वीरता भी ऐसी ही है । कहा भी है—

"आकार, इंगित, गति, चेष्टा और भाषणसे, नेत्र और मुखके विकारोंसे मनके भीतरकी बात पहचानी जा सकती है।"

रतिकी बात सुनकर जिनराज हँस पड़े और कहने लगे—हे रति, तुम डरो मत। यह कभी न होगा। यह संभव नहीं है कि शुक्लध्यानवीर हमारी बात न माने और तुमलोगोंको मार डाले इस प्रकार कहकर जिनराजने शुक्लध्यानवीरको रति और प्रीतिके साथ भेज दिया।

तदुपरान्त रति और प्रीति वहाँसे चलकर कामके पास आयीं और काम से कहने लगीं—नाथ, आपकी प्राणरक्षाके लिए हम लोगोंने जिनराजसे अनेक प्रकारकी अनुनय-विनय की और यदि हम लोगोंने उनकी इस प्रकारसे स्तुति-प्रार्थना न की होती तो आपकी प्राणरक्षा असम्भव थी। इस समय जिनराजने दर्शनवीरसे लिखवाकर एक स्वदेश-सीमापत्र दिया है, जिसे आप पढ़ लीजिए। अतः हम लोग जिनराजके देशकी सीमा छोड़कर अन्यत्रके लिए चल दें और वहाँ शान्तिके साथ जीवनयापन करें। इस समय दैव प्रतिकूल है। और पता नहीं, उसके मनमें क्या समाया हुआ है? इसके अतिरिक्त जिनराजने हमलोगों को कुछ दूर तक भिजवानेके लिए शुक्लध्यानवीरको साथमें भेजा है। इसलिए अब हमें यहाँसे चल ही देना चाहिए।

रति और प्रीतिकी बात सुनकर काम अपने मनमें सोचने लगा—कि अब क्या करना चाहिए? शुक्लध्यान हमारा सहचर बनाया गया है, जो हमारे हकमें कदापि शुभकर न होगा। यदि मैं शुक्लध्यानवीरकी दृष्टिमें आ गया तो यह अवश्य ही हमारे ऊपर प्रहार करनेसे न चूकेगा। इसलिए इस शुक्लध्यानवीरका क्या विश्वास किया जाय? कहा भी है—

"बलवान् भी अविश्वस्त दुर्बलोंको नहीं बाँध सकते, और विश्वस्त होकर बलवान् भी दुर्बलोंके द्वारा सरलतासे बाँध लिये जाते हैं।"

कामने इस प्रकार सोच-विचार करनेके उपरान्त अपना शरीर सर्वथा ध्वस्त कर दिया और अनङ्ग होकर युवतियोंकी हृदय-कन्दरामें प्रवेश कर गया।

इस अवसरपर इन्द्र ब्रह्मासे कहने लगे—देव, देखिए, देखिए, कामदेव अनङ्ग होकर अदृश्य हो गया है।

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन (नाग) देवविरचित संस्कृतबद्ध मदनपराजयमें अनङ्ग-भङ्ग नामक चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुआ।

पंचमः परिच्छेदः

१ तं मन्मथं विजयपौरुषदर्पहीनं
योषिज्जनामलविलासगृहं प्रविष्टाम् ।
दृष्ट्वातिहृष्टमनसा त्रिदशाधिपेन
प्राहूय तत्र च वधां वच एतदुक्तम् ।।१।।
वधे, त्वया मोक्षपुरं हि गत्वा
श्रीसिद्धसेनं प्रति वाक्यमेवम् ।
विवाहकार्याय सुतां स्वकीयां
शीघ्रं गृहीत्वा गमनं प्रकार्यम् ।।२।।
श्रुत्वा वचस्तत्र दया ढुढौके
प्राप्यान्तिकं मोक्षपुराधिपस्य ।
तां सम्मुखं वीक्ष्य दयामयासा-
वेवं वचः प्राह च सिद्धसेनः ।।३।।
का त्वं दयाऽहं किमिहागतासि
प्रस्थापिता भो त्रिदशाधिपेन ।
कार्याय कस्मै च ततस्तयाद्य
वृत्तान्तमु(उ)क्तं (क्तः)स पुनर्बभाद ।।४।।
कोऽसौ वरो मे तनयासमानो
गोत्रं कुलं कीदृशमस्ति रूपम् ?
कायोच्छ्रयस्तस्य कतिप्रमाण-
स्तस्यैवमाकर्ण्य वचोऽब्रवीत् सा ।।५।।

रूपनामगुणगोत्रलक्षणाऽऽपृच्छया
किमिति कारणं प्रभो ?
सोऽब्रवीच्छृणु त्वयेऽधुना हि
तत्कारणं सकलमत्र कथ्यते ॥६॥

रूपवान् विमलवंशसम्भवो
देवशास्त्रगुरुभक्तिमान् सदा ।
सज्जनोपकृतिकारको युवा
संयुतः [illegible] ॥७॥

शीलवान् धनयुतो हि सद्गुणो
शान्तिमूर्तिरपि सोद्यमो भवेत् ।
यो हि, तस्य तनुजा प्रदीयते,
सा तथा तत इदं वचोऽवदत् ॥८॥

श्रीनाभिपुत्रो वृषभेश्वराख्य-
स्तस्य प्रभो, तीर्थकरंच गोत्रम् ।
रूपेण रम्योऽद्भुतहाटकाभो
विशालवक्षः स्थलभासमानः ॥९॥

सर्वप्रियोऽष्टाग्रसहस्रसंख्यकैः
सल्लक्षणैर्युक्तवपुः शृणु प्रभो ।
योऽशीतिलक्षैश्च चतुर्भिरुत्तरै-
र्गुणैर्युतः शाश्वतसम्पदान्वितः ॥१०॥

आकर्णदीर्घोत्पललोचनोऽसौ
योजानुविश्रान्तसुबाहुदण्डः ।
किं स्तौम्यहं तस्य वरस्य रूपं
यस्योच्छ्रयश्चापशतानि पञ्च ॥११॥

आकर्ण्य सर्वं वरवर्णनं तद्-
भूत्वा ततो हृष्टमनाऽब्रवीत् (उवाच) सः ।
दयेऽधुनाऽलं पुनरेव गत्वा
त्वया प्रतीन्द्रं कथनीयमेवम् ॥१२॥

प्रस्थापयामः स्वसुतां भवद्भिः
स्वयंवरार्थं रचनाऽऽशु कार्या ।
आनीयते कर्मधनुर्विशालं
यत्कालभूपालकमन्दिरस्थम् ॥१३॥

श्रुत्वा समस्तं [illegible] हृष्टा
शीघ्रं च मोक्षादथ निर्गता सा ।
सम्प्राप्य शक्रं प्रति तत् समस्तं
दया हि वृत्तान्तमचीकथत् सा ॥१४॥

सकलमिति च श्रुत्वा क्षिप्रमाहूय यक्षं
धनदमथ सुरेशस्तं प्रतीदं बभाषे ।
सकलसुरनराणां मानसाह्लादकारं
समवशरणसंज्ञं मण्डपं हे (त्वं) कुरुष्व ॥१५॥

श्रुत्वेवमिन्द्रवचनं धनदः स तस्मिन्
सोपानविंशतिसहस्रविराजमानम् ।
भृङ्गारतालकलशध्वजचामरौघ-
श्वेतातपत्रवरदर्पणसंयुतं च ॥१६॥

स्तम्भप्रतोलिनिधिमार्गतटाकवल्ली-
प्रोद्यानधूपघटहाटकवेदिकाभिः ।
विभ्राजितं विमलमौक्तिकभासमानं
द्वारैः सुतोरणयुतैः सहितं चतुर्भिः ॥१७॥

प्रासादचैत्यनिलयामरवृक्षनाट्य-
शालात्रिकोष्ठकसुगोपुरसंयुतं च ।
एवंविधं ह्यनुपमं किल मण्डपं स
चक्रे हि षड्गुणयोजनविस्तरं तम् ।१८।(संदानितकम्)

तस्मिस्ततोऽमरपतिप्रमुखाः समस्ता
विद्याधरामरनरोरगकिन्नराद्याः ।
गन्धर्वदिक्पतिफणीश्वरचक्रवर्त्ति-
यक्षादयोऽपि सकलाश्च समागतास्ते ॥१९॥

अथास्रवैः पंचभिराशु तस्मिन्
सत्कालभूपालककोशसंस्थम् ।
कापोतनीलासितदुष्टलेश्या-
वर्णैरशेषैस्तु सुचित्रितं यत् ॥२०॥

मध्ये समोहायतसूत्रबद्धं
त्वाशागुणेन प्रतिभासमानम् ।
प्रानीय सर्वामरसम्मुखं तैः
संस्थापितं तद् दृढकर्मचापम् ॥२१॥(युग्मम्)

प्रवर्त्तते तत्र च यावदेवं
तावत्ततो या रमणीयरूपा ।
सदा हि शुद्धस्फटिकाभदेहा
रत्नत्रयालङ्कृतरम्यकण्ठी ॥२२॥

पूर्णेन्दुबिम्बप्रतिमानना या
नीलोत्पलस्पर्द्धिविशालनेत्रा ।
हस्ते गृहीतामलरत्नमाला
सैवं प्रपन्ना वरमुक्तिलक्ष्मीः ॥२३॥ (युग्मम्)

तद्वीक्ष्य सर्वं त्रिदशाधिराज-
स्ततोऽब्रवीत्तान् सकलान् प्रतीदम् ।
परिसद्धसैनेन [illegible]
यूयं समस्ताः शृणुतात्र सर्वम् ॥२४॥

यः कर्मकोदण्डमिदं विशालं
ह्याकर्षते मुक्तिपतिः स च स्यात् ।
श्रुत्वा तदेवं न च किञ्चिदूचुः
परस्परं वीक्ष्य मुखं यदा ते ॥२५॥

तदा जिनेन्द्रोऽतिमनोहरो यो
लोकेश्वरः सन्ततशान्तमूर्त्तिः ।
ज्ञानात्मको ज्ञातसमस्ततत्त्वो
दिगम्बरः पुण्यकलेवरो यः ॥२६॥

भवार्णवोत्तीर्ण उदारसत्त्वो
दशार्द्धकल्याणविभूतियुक्तः ।
आताम्रनेत्रो वरपद्मपाणी
रजोमलस्वेदविमुक्तगात्रः ॥२७॥

तपोनिधिः क्षान्तिदयोपपन्नः
समाधिनिष्ठस्त्वथ निष्प्रपञ्चः ।
छत्रत्रयेणातिसितेन रम्यो
भामण्डलेन प्रतिभासमानः ॥२८॥

यो देवदेवो मुनिवृन्दवन्द्यो
वेदेषु शास्त्रेषु य एव गीतः ।
निरंजनः सर्वगतिरव्ययो यः
सिंहासनादुत्थित को(ई)दृशोऽसौ॥२९॥(कलापकम्)

आगत्य चापाभिमुखो हि भूत्वा
हस्ते गृहीत्वा परमेश्वरेण ।
आकर्णसज्जीकृतमाशु याव-
त्तावन्महानादयुतञ्च भग्नम् ॥३०॥

तद्भङ्गनादोच्चलिता च पृथ्वी
प्रकम्पिताः सागरपर्वताद्याः ।
स्वर्गस्थिताः पद्मभवादिदेवा
मूर्छां प्रपन्नाः पतिताश्च सर्वे ॥३१॥

ततस्तया वीक्ष्य समस्तमेवं
मुक्तिश्रियाऽऽनन्दसमेतया तत् ।
क्षिप्ताशु कण्ठे वरतत्त्वमाला
श्रीनाभिसूनोर्परमेश्वरस्य ॥३२॥

प्राप्तास्ततो मङ्गलयोषितश्च
चतुर्णिकायास्त्रिदशाः समस्ताः ।
अन्येऽप्यसंख्या मिलिताश्च तस्मिन्
जना जिनेन्द्रोत्सववीक्षणार्थम् ॥३३॥

तद्यथा—

मृगपतिमहिषोष्ट्राऽष्टापदद्वीपिरिश्य-
वृषमकरवराहव्याघ्रकारण्डवाश्च ।
द्विपवककलहंसाश्चक्रवाकाश्च भृङ्गद्विजपति-
गवयाश्वाः कुक्कुटाः सारसाश्च ॥३४॥

इत्यादिवाहनविमानसमाधिरूढा
ये षोडशाभरणभूषितदिव्यदेहाः ।

आन्दोलितध्वजपटप्रचुरातपत्रा
नानाकिरीटमणिभाप्रहताकंभा ये ॥३५॥
दिव्यायुधस्वपरिवारवधूसमेता
उच्चैःकृतस्तुतिमनोहरनृत्यगीताः।
भेरीमृदङ्गपटहाम्बुजकाहलादि-
घण्टास्वनैर्बधिरिताम्बरमण्डला ये ॥३६॥
अन्योन्यवाहनविमानकराङ्घ्रिदेह-
संघर्षणत्रुटितमौक्तिकरत्नमालाः।
एवंविधा मुकुलिताञ्जलिपाणिपद्माः
आवागता जय जयेति रवं ब्रुवन्तः ॥३७॥
(संदानितकम्)

तथा च—

श्रीह्रीकीर्त्तिसमस्तसिद्धिसमता-
निःस्वेदतानिर्जराः
वृद्धिर्बुद्धिरशल्यता सुविभवा
बोधिः समाधिः प्रभा।
शान्तिर्निर्मलता प्रणीतिरजिता
निर्मोहता भावना
तुष्टिः पुष्टिरमूढदृष्टिसुकलाः
स्वात्मोपलब्ध्यादयः ॥३८॥
निःशङ्काकान्तिमेधाविरति-
मतिधृतिक्षान्तिवाचाऽनुकम्पा
इत्याद्याः पुण्यरामा ललित-
भुजलता इन्दुतुल्यानना याः।

नानाहारैर्विचित्रैर्विविधमणिमयै
रम्यवक्षःस्थला याः
सम्प्रापुस्तत्र शीघ्रं जिनवर-
यात्रामङ्गलं गायनार्थम् ॥३६॥ (युग्मम्)

ततो हि मुक्त्या सहितो जिनेन्द्रो
मनोरथेभं स आरुरोह ।
कृतामरौघैर्वरपुष्पवृष्टिश्चक्रे
सुनृत्यं पुरतोऽमरेन्द्रः ॥४०॥

कुर्वन्ति शेषाभरणं दयाद्या
वागीश्वरी गायति मङ्गलञ्च ।
प्रणादिताः शङ्खसमृदङ्गभेर्यः
सत्काहलाद्या पटहाः सुरौघैः ॥४१॥

तथा च—

अनन्तकेवलज्ञानदीपिकानां हि तेजसा ।
विभात्यनुपमा लोके वरयात्रा जिनप्रभोः ॥४२॥

[पंचम परिच्छेद]

❋ १ जब इन्द्रने देखा कि कामदेव विजय, पौरुष और गर्वसे हीन होकर युवतियोंकी हृदयकन्दरामें प्रवेश कर गया है तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुरन्त ही दयाको अपने पास बुलवाया और उससे इस प्रकार बात करने लगा—

दये, तुम मोक्षपुर जाओ। वहाँ पहुँचकर सिद्धसेनसे कहना कि वह विवाहके लिए अपनी कन्या लेकर यहाँ शीघ्र आवें।

इन्द्रका वचन सुनकर दयाने प्रस्थान कर दिया। वह मोक्षपुरके अधिपति सिद्धसेनके सामने पहुँच गयी। सिद्धसेनने सामने आते ही उससे पूछा-तुम कौन हो?

दयाने कहा—मैं दया हूँ।

सिद्धसेन—तुम यहाँ किसलिए आयी हो?

दया—मुझे यहाँ इन्द्रने भेजा है।

सिद्धसेन—इन्द्रने तुम्हें यहाँ किस कार्यसे भेजा है?

दयाने उत्तरमें इन्द्रके द्वारा कहा हुआ समस्त वृत्तान्त सिद्धसेनको सुना दिया।

तदनन्तर सिद्धसेन कहने लगे—वह प्रस्तावित वर कौन-सा वीर है? क्या मेरी कन्या-जैसी योग्यता उसमें है? उसका गोत्र, कुल और रूप कैसा है? उसके शरीरकी ऊँचाई कितनी है?

सिद्धसेनकी प्रश्नावली सुनकर दया कहने लगी—प्रभो, आप वरके रूप, नाम, गोत्रके सम्बन्धमें क्यों पूछ रहे हैं?

दयाके प्रश्नके उत्तरमें सिद्धसेन कहने लगे—दया, सुनो, मैं तुम्हें इस सम्पूर्ण प्रश्नावलीके पूछने हेतु बतलाता हूँ। वह कहने लगे—

दया, जो वर रूपवान्, कुलीन, देव-शास्त्र और गुरुओंमें भक्तिमान्, प्रकृतिसे सज्जन, शुभलक्षण-सम्पन्न, सुशील, धनी, गुणी, सौम्य-मूर्ति और उद्यमी होता है उसीको कन्या देनी चाहिए। यदि किसी वरमें ये विशेषताएँ न हों तो उसे कन्यादानका पात्र नहीं समझना चाहिए। सिद्धसेन कहने लगे - दया, मैंने इसी कारणसे यह वर-प्रश्नावली तुमसे पूछी है।

सिद्धसेनकी बात सुनकर दया कहने लगी—सिद्धसेन, तब आप अपनी प्रश्नावलीका उत्तर सुन लीजिए—

श्रीनाभिनरेशके पुत्र श्रीवृषभ तो वर हैं। तीर्थंकरत्व उनका गोत्र है। रूपसे सुवर्ण-सुन्दर हैं। उनका वक्ष:स्थल विशाल है। वे सबके प्रिय हैं और १००८ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न उनका शरीर है। वे चौरासी लाख उत्तर गुणोंसे सम्पन्न और शाश्वत सम्पत्तिसे संयुक्त हैं। आकर्णदीर्घ और कमलके समान उनके नेत्र हैं। एक योजनकी लम्बी भुजाएँ हैं। मैं उस वरके सौन्दर्यका कहाँ तक वर्णन करूँ जिसकी ऊँचाई पाँच सौ धनुषप्रमाण है।

दया-द्वारा बतलायी गयो वर महोदयकी समस्त गुण-गाथा सुनकर सिद्धसेनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह दयासे कहने लगे—दया, अच्छी बात है। तुम इन्द्रके पास जाओ और कहो कि सिद्धसेन अपनी कन्याको ला रहे हैं, तबतक स्वयंवरकी तैयारी करो। यह भी कहना कि वे अपने साथ यमराजके मन्दिरमें रखा हुआ अपना विशाल कर्मधनुष भी साथमें लावेंगे।

सिद्धसेनकी बात सुनकर दयाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह शीघ्र ही मोक्षपुरसे चल पड़ी और इन्द्रके पास पहुँचकर समस्त वृत्तान्त सुना दिया।

इन्द्रने जैसे ही दया-द्वारा बतलाया गया समस्त समाचार सुना, कुबेरको बुलाकर वे उसे तत्काल इस प्रकारका आदेश देने लगे—

कुबेर, तुम तुरन्त एक समवशरण नामक मण्डप तैयार करो, जिसे देखकर समस्त देव और मानवोंका मन आह्लादित हो जाय।

इन्द्रके आज्ञानुसार कुबेरने समवशरण मण्डपकी रचना की, जिसमें २०००० सीढ़ियाँ थीं और जो भृङ्गार, ताल, कलश, ध्वजा, चामर, श्वेत छत्र, दर्पण, स्तम्भ, गोपुर, निधि, मार्ग तालाब, लता उद्यान, धूपघट, सुवर्ण, निर्मल मुक्ता फलसे सुशोभित और चार

सुन्दर तोरण द्वारोंसे अभिराम था। इसके अतिरिक्त भवन, चैत्यालय, कल्पवृक्ष, नाट्यशाला, द्वादश सभाओं और गोपुरोंसे रमणीय सभा-मण्डप बारह योजनके विस्तारमें तैयार कर दिया गया।

इस समवशरणमें इन्द्र आदिक समस्त देव, विद्याधर, मनुष्य, उरग, किन्नर, गन्धर्व, दिक्पति, फणीन्द्र, चक्रवर्ती और यक्ष आदिक सब आकर उपस्थित हो गये।

इसके पश्चात् आस्रवोंने कर्मधनुषको—जो यमराजके भवनमें रक्खा हुआ था, कृष्ण, नील, कापोत-दुष्ट लेश्यामय वर्णोंसे चित्रित था, बीचमें मोहरूपी तांतसे बँधा था और आशारूप डोरीसे अलंकृत था—लाकर समस्त देवताओंके सामने रख दिया।

आस्रवोंने कर्मधनुषको लाकर रक्खा ही था इतनेमें रमणीय रूपवती, शुद्ध स्फटिक शरीरवाली, रत्नत्रयीरूप रेखाओंसे अलंकृत कण्ठवाली, पूर्ण चन्द्रमुखी, नील कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली मुक्ति-लक्ष्मी भी हाथमें तत्त्वरूपी वरमाला लेकर उपस्थित हो गयी।

सबको उपस्थित देखकर इन्द्र कहने लगा—वीरो, आप सिद्ध-सेन महाराजका सन्देश सुन लीजिए।

उनका सन्देश है कि जो इस विशाल कर्मधनुषको खींचकर उसका भङ्ग करेगा वही मुक्ति-कन्याका वर समझा जायगा।

इन्द्रकी घोषणा सभीने सुनी, परन्तु उसे सुनकर सब एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। कोई भी धनुष तोड़नेके लिए तैयार नहीं हुआ।

इतनेमें अत्यन्त मनोहर, शान्तमूर्ति, सर्वज्ञ, समस्त तत्त्वोंके साक्षात्कर्त्ता, दिगम्बर, पुण्यमूर्ति, संसारके उद्धारक, अनन्त शक्ति-शाली पाँच कल्याणकों से अलंकृत, आताम्रनेत्र, कमलपाणि, पाप-मल

और स्वेद आदिसे रहित तपोनिधि, क्षमाशील, संयमी, दयालु, समाधिनिष्ठ तीन छत्र और भामण्डलसे सुशोभित, देव-देव, मुनिवृन्दके द्वारा वन्दनीय, वेद-शास्त्रोंद्वारा उपगीत और निरञ्जन जिनराज सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। वह धनुषके सामने आये और उसे हाथमें ले लिया। उन्होंने जैसे ही उसे कान तक खींचा, वह टूट गया और उसके टूटनेसे एक महान् भयङ्कर शब्द हुआ।

कर्म-धनुषके भङ्ग होनेपर जो नाद हुआ, उससे पृथ्वी चलित हो गयी। सागर और गिरि कंप गये तथा ब्रह्मा आदि समस्त देव मूर्च्छित होकर गिर गये।

ज्यों ही मुक्ति-श्रीने यह दृश्य देखा, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने तत्काल नाभिनरेशके सुपुत्र श्री वृषभनाथके कण्ठमें तत्त्वमय वर-माला डाल दी।

वरमालाके डालते ही देवाङ्गनाएँ मङ्गल-गान गाने लगीं और इस महोत्सवको देखनेके लिए समस्त चतुर्निकायके देव आकर उपस्थित हो गये। इन देवोंमें कोई सिंहके वाहनपर सवार थे तो कोई महिषके। कोई ऊँटके वाहनपर अधिरूढ़ थे, तो कोई चीतेके। कोई बैलके वाहनपर बैठे हुए थे, तो कोई मकरके। किन्हींका वाहन वराह था तो किन्हींका व्याघ्र। किन्हींका गरुड़ था तो किन्हींका हाथी। किन्हींका बगुला था तो किन्हींका हंस। किन्हींका चक्रवाक था तो किन्हींका गैंडा। किन्हींका गरुड़ था तो किन्हींका गवय। किन्हींका अश्व था तो किन्हींका सारस। इस प्रकार समस्त देव अपने-अपने वाहनोंपर बैठे हुए थे। इसके अतिरिक्त उनके शरीर सोलह प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित थे, उनके विमानोंकी ध्वजाएँ और वस्त्र वायु-विकम्पित हो रहे थे और उनके किरीटोंकी कान्ति अनेक प्रकारके देदीप्यमान मणि और सूर्यके प्रकाशको भी अभिभूत कर रही थी।

ये देव सपरिवार थे और दिव्य आयुधोंसे अलंकृत थे। कोई उच्च स्वरसे मधुर स्तुति-पाठ कर रहे थे तो कोई मनोहारी नृत्य और संगीतमें तन्मय थे। और कोई भेरी, मृदङ्ग, नगाड़े और घण्टा आदि बजाकर आकाशको गुञ्जित कर रहे थे।

इन देवोंके अतिरिक्त श्री, ह्री, कीर्ति, सिद्धि, निर्वेदता, निर्जरा, वृद्धि बुद्धि, अशल्यता, सुविभवा, बोधि, समाधि, प्रभा, शान्ति, निर्मलता, प्रणीति अजिता, निर्मोहिता, भावना, तुष्टि, पुष्टि, अमूढ़दृष्टि, सुकला, स्वात्मोपलब्धि, निःशङ्का, कान्ति, मेधा, विरति, मति, धृति, क्षान्ति, अनुकम्पा इत्यादि देवियाँ भी—जो सुन्दर भुज-लताओं और चन्द्र-तुल्य मुखोंसे अलंकृत थीं, विचित्र और विविध मणिमय हारोंसे जिनके वक्ष:स्थल सुशोभित थे—जिनराजके विवाहमें मङ्गल-गीत गानेके लिए आ पहुँचीं।

तदनन्तर भगवान् जिनेन्द्र मुक्ति-श्रीके साथ मनोरथरूपी हाथीपर आरूढ़ हो गये। उस समय देवताओंने पुष्पवृष्टि की और इन्द्रने उनके सामने नृत्य किया। दया आदि देवियोंने भगवान्को दिव्य आभरण पहिनाये और वागीश्वरी मङ्गल-गान गाने लगी। शेष देवोंने शङ्ख, मृदङ्ग, भेरी और नगाड़े बजाये।

इस अवसरपर अनन्त केवलज्ञानरूपी दीपकोंके तेजसे जिनराजकी वरयात्रा अत्यन्त अनुपम मालूम हो रही थी।

* २ एवंविधो यः परमेश्वरोऽसौ
चतुर्णिकायाऽमरवन्द्यमानः।
पुण्याङ्गनागानसुगीयमानो
भामण्डलेन प्रतिभासमानः॥४३॥
संस्तूयमानो मुनिमानवौघै-
र्यक्षैश्च यश्चामरवीज्यमानः।

छत्रत्रयेणाऽतिसितेन रम्यो
मोक्षस्य मार्गेण जगाम यावत् ॥४४॥

तथा च—

तावच्च तत्रावसरेऽब्रवीदिदं
सुसंयमश्रीश्च तपःश्रियं प्रति ।
किं त्वं न जानासि, महोत्सवान्वितो
निष्पन्नकार्यश्च जिनस्त्वमुद्यम् ॥४५॥
आगत्य चारित्रपुरं स भूयो
विध्वन्सते चेत्त(चे)त्कथमप्यनङ्गः ।
तस्माच्च विज्ञापय वीतरागं
स्थातव्यमस्माभिरिहैव यस्मात् ॥४६॥
(कलापकम्)

आकर्ण्य तस्याः सकलं वचस्ततः
प्राह त्वया हे सखि, युक्तमीरितम् ।
उत्थाय सैवं कृतपाणिसम्पुटा
प्रोचे तपःश्रीः पुरतो जिनेश्वरम् ॥४५॥
भो पुण्यमूर्त्ते त्रिजगत्सुकीर्त्ते
हे चारुचामीकरतुल्यकान्ते ।
भो द्वेषरागाद्यभयोपशान्ते
विज्ञाप्यमेकं त्ववधारणीयम् ॥४६॥
भूयोऽपि चारित्रपुरे स्मरश्चे-
द्विध्वंसते, तज्जिन किं प्रकार्यम् ?

यतो हि यूयं कृतसर्वकार्याः
कः पालयिष्यत्यधुना नरोऽस्मान् ।।४७।।
(युग्मम्)

अथ हि जिनवरेणाकर्ण्य तत्सर्वमेवं
सकलश्रुतसमुद्रं सज्जनानन्दचन्द्रम् ।
मदनगजमृगेन्द्रं दोषवल्ल्यामरेन्द्रं ।
सकलमुनिजिनेशं कर्मविध्वंसरौद्रम् ।।४८।।

हतकुगतिनिवासं यं दयार्थीविलासं
भवकलुषविनाशमर्थिनां पूरिताशम् ।
सकलगणधरेशं ज्ञानदीपप्रकाशं
तमिति वृषभसेनं क्षिप्रमाहूय, पश्चात् ।।४९।।

प्रोचे जिनस्तं प्रति भो शृणु त्वं
वयं ततो मोक्षपुरं व्रजामः ।
त्वया तपःश्रीगुणतत्त्वमुद्रान् (द्राः)
महाव्रता चारदयामयादीन् (द्याः) ।।५०।।

अस्मिन् सुचारित्रपुरे समस्ता
एते ह्यवश्यं प्रतिपालनीयान् (याः) ।
सम्बोध्य तानेवमसौ जिनेशो
विनिर्गतो मोक्षपुरं सुखेन ।।५१।।
(कलापकम्)

।। इति श्री ठक्कुरमाइन्ददेवसुतजिन(नाग)देवविरचिते
स्मरपराजये सुसंस्कृतबन्धे मुक्तिस्वयंवरो
नाम पंचमः परिच्छेदः ।।५।।

सायन्तं यः शृणोतीदं स्तोत्रं स्मरपराजयम् ।
तस्य ज्ञानंच मोक्षः स्यात् स्वर्गादीनां च का कथा ? ।१।

तावद् दुर्गतयो भवन्ति विविधास्तावन्निगोदस्थिति–
स्तावत् सप्त सुदारुणा हि नरकास्तावद्दरिद्रादयः ।
तावद् दुःसहघोरमोहतमसाच्छन्नं मनः प्राणिनां
यावन्मारपराजयोद्भवकथामेतांच शृण्वन्ति न ।।२।।

तथा च–

शृणोति वा वक्ष्यति वा पठेत्तु यः
कथामिमां मारपराजयोद्भवाम् ।
सोऽसंशयं वै लभतेऽक्षयं सुखं
शीघ्रेण कायस्य कदर्थनं विना ।।३।।

अज्ञानेन धिया विना किल जिनस्तोत्रं मया यत्कृतं
किं वा शुद्धमशुद्धमस्ति सकलं नैवं हि जानाम्यहम् ।
तत्सर्वं मुनिपुङ्गवाः सुकवयः कुर्वन्तु सर्वे क्षमां
संशोध्याशु कथामिमां स्वसमये
विस्तारयन्तु ध्रुवम् ।।४।।

।। इति स्मरपराजयं समाप्तम् ।।

* २ इस प्रकार चतुर्निकायके देवों-द्वारा वन्दित, सुराङ्गनाओंके पवित्र और श्रुति-मधुर गीतों द्वारा गान किये गये, भामण्डलसे प्रतिभासित, मुनि-मानव और यक्षोंके द्वारा स्तुति किये गये और चामरोंसे विजित तथा तीन छत्रोंसे सुशोभित जिनेन्द्र जैसे ही मोक्षके मार्गसे आनेके लिए उद्यत हुए, संयमश्री अपनी सहेली तपःश्रीसे इस प्रकार कहने लगी—

सखी तपःश्री, क्या तुम्हें मालूम नहीं है, भगवान् जिनेन्द्र विविध महोत्सवोंसे भूषित और कृतकृत्य होकर मोक्षमार्गकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं ? यदि भगवान् मोक्ष चले गये तो कामदेव सबल होकर चारित्रपुर पर आक्रमण करके पुनः हमलोगोंको कष्ट पहुँचा सकता है। इसलिए हमें भगवान्के पास चलकर उनसे यह निवेदन करना चाहिए कि वे मोक्ष जानेके पहले हमलोगोंकी सुरक्षाका कोई स्थिर प्रबन्ध करते जावें।

संयमश्रीकी बात सुनकर तपःश्री कहने लगी—सखि, तुम्हारा कथन बिलकुल यथार्थ है। चलो, हम लोग भगवान् जिनराजके पास चल कर उन्हें अपनी प्रार्थना सुनावें।

इस प्रकार निश्चय करके ये दोनों सखियाँ भगवान् जिनेन्द्रकी सेवामें पहुँचीं और हाथ जोड़कर इस प्रकार विनय करने लगीं—

हे पुण्यमूर्ति, त्रिभुवनके यशस्वी, सुन्दर सुवर्ण-वर्ण, वीतराग भगवन्, हमें आपकी सेवामें एक विनय करनी है। वह यह है कि आप तो कृतकृत्य होकर मोक्ष जा रहे हैं, और यदि कामने पुनः चारित्रपुरपर आक्रमण किया तो यहाँ आपके अभावमें हम लोगोंकी सुरक्षा कौन करेगा ?

भगवान् जिनेन्द्रने संयमश्री और तपःश्रीकी यह विनय सुनी। उन्होंने भी अनुभव किया कि इनकी विनय वस्तुतः महत्त्वपूर्ण है।

भगवान्‌ने तत्काल उस वृषभसेन गणधरको बुलाया जो सम्पूर्णशास्त्र-समुद्रके पारगामी थे, चन्द्रकी तरह मनुष्योंको आह्लादित करते थे, मदन-गजके लिए मृगेन्द्र-जैसे थे, दोषरूपी दैत्योंके लिए अमरेन्द्रके समान थे, समस्त मुनियोंके नायक थे, कर्मोंके नाश करनेमें कुशल थे, कुगतिनाशक थे, दया तथा लक्ष्मीके लीलायतन थे, संसारके पाप-पङ्कको प्रक्षालित करने वाले थे, याचकोंके मनोरथ पूर्ण करने वाले थे, समस्त गणधरोंके ईश थे और ज्ञानके प्रकाश थे। और बुलाकर जिनराज उनसे इस प्रकार कहने लगे—

वृषभसेन, देखो हम तो मोक्षपुर जा रहे हैं। तुम तपःश्री, संयमश्री, गुण और तत्त्वोंसे मण्डित, महाव्रत, आचार, दया और नय आदिसे अलङ्कृत समस्त चारित्रपुर-निवासियोंकी भली भांति रक्षा करना।

इस प्रकार चारित्रपुरकी रक्षाका सम्पूर्णभार वृषभसेन गण-धरको सौंपकर भगवान् जिनेन्द्र बड़े ही आनन्दके साथ मोक्षपुर चले गये।

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन (नाग) देवविरचित संस्कृतबद्ध मदनपराजयमें मुक्तिस्वयंवर नामक पाँचवाँ परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।

जो व्यक्ति इस मदनपराजयको पढ़ता है और सुनता है उसको सम्यग्ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होती है। स्वर्गादिककी तो बात ही क्या ?

मनुष्यकी तभी तक विविध प्रकारकी दुर्गति होती है, तभी तक उसे निगोदमें रहना पड़ता है, तभी तक सात नरकोंमें जाना पड़ता है, तभी तक दरिद्रताका संकट झेलना पड़ता है, और तभी तक प्राणियोंका मन दुःसह और घोर अन्धकारसे आच्छन्न रहता है, जब तक वह इस मदनपराजय-कथा को नहीं सुनता है।

जो मनुष्य इस मदनपराजय-कथाको सुनता है और उसका वाचन करता है, काम उसे कभी बाधा नहीं पहुँचाता और वह निःसन्देह अक्षय सुखको प्राप्त करता है। ग्रन्थकार कहते हैं, मैं अज्ञानी हूँ। बुद्धि मुझमें है नहीं। फिर भी मैंने इस जिनस्तोत्रकी रचना की है। मैं नहीं जानता कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ शुद्ध है अथवा अशुद्ध। फिर भी समस्त मुनिनाथ और सुकवियोंसे प्रार्थना है कि वे मुझे इस अपराधके लिए क्षमा करें और इस मदनपराजय-कथामें उचित संशोधन करके इसके लक्ष्यका सदैव प्रसार करें।

इस प्रकार मदन-पराजय समाप्त हुआ।

समाप्त